Con. VIII.10.49
320

अंक 8
संख्या 10

शुक्रवार,
27 मई
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान-सभा के नियमों (अनुसूची) में कंडिका 4-क की प्रविष्टि..... 551-576

संविधान का प्रारूप..... 576-612

[अनुच्छेद 104 से 123 पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

शुक्रवार, 27 मई सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय, (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अपने देश में नये सिक्कों के जारी करने के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण विषय पर क्या आपकी अनुज्ञा से मैं आपका ध्यान आकर्षित कर सकता हूं? हमारी कठिनाई यह है कि इन दिनों भारतीय संसद तो समवेत हो ही नहीं रही है और संविधान-सभा ही सर्वोच्च निकाय है जिसका सत्र हो रहा है। मुझे विश्वास है कि वित्त-विभाग में नये सिक्के चालू करने के पूर्व प्रश्न पर वाद-विवाद हो रहा है और मुझे यह सूचना मिली है कि इस सम्बन्ध में कुछ निर्णय भी कर लिये गये हैं। सिक्के जारी करने का प्रश्न बड़े महत्त्व का है और मुझे यह सूचना मिली है कि नये सिक्कों के आकार प्रकार के प्रति अब तक वित्त समिति पर भी विश्वास नहीं किया गया है। विशेष कर मुझे यह सूचना मिली है कि यद्यपि अशोक स्तम्भ रखा गया है और बादशाह की छाप हटा दी गई है फिर भी नये सिक्कों में अंग्रेजी अक्षरों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अतः श्रीमान्, मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप कृपा कर इस सदन को इस विषय पर विचार करने का अवसर दें और यदि आवश्यक हो तो इस आशय के लिये माननीय वित्त मंत्री को आमंत्रित करें।

***अध्यक्ष:** इस सदन में हम इस विषय को नहीं ले सकते हैं। यहां हम केवल संविधान तैयार करने के लिये आये हैं और यह प्रश्न, जिसे माननीय सदस्य ने उठाया है इस सदन के विधायी पक्ष का है और मैं यह सुझाव दूंगा कि वे इस विषय को वहीं उठायें और यदि उस सभा का सत्र नहीं हो रहा है तो वे सरकार से इस विषय में बातें कर सकते हैं।

संविधान-सभा के नियमों (अनुसूची) में कंडिका 4-क की प्रविष्टि

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि संविधान-सभा के नियमों की अनुसूची में कंडिका 4 के पश्चात् निम्न कंडिका प्रविष्ट की जाये:
>
> '4-A. Notwithstanding anything contained in paragraph 4, all the seats in the Assembly allotted to the State of Kashmir may be filled by nomination and the representatives of the State to be chosen to fill such seats may be nominated by the Ruler of Kashmir on the advice of his Prime Minister.' ''

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

इस सदन के समक्ष इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिये मेरी ओर से वास्तव में बहुत कम शब्दों की आवश्यकता है। काश्मीर उन राज्यों में से है जिसका इस सभा के निर्माण करने के हेतु बने हुए नियमों के अंतर्गत, इस सदन में प्रतिनिधान होना चाहिये। यह प्रतिनिधान किस प्रकार प्राप्त किया जाये इसके सम्बन्ध में नियम बना दिये गये हैं। यद्यपि अक्टूबर सन् 1947 के अन्त से काश्मीर भारतीय अधिराज्य में प्रवेश कर गया था पर उसका प्रतिनिधान नहीं हो पाया था। माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि इन समस्त मासों में काश्मीर की दशा अस्थिर सी रही। काश्मीर के शासक ने स्वयं भारतीय अधिराज्य में प्रविष्ट होने की प्रार्थना की। राज्य की एक महान् राजनैतिक संस्था ने इसका समर्थन किया और गवर्नर-जनरल ने उसे स्वीकार कर लिया। जैसा कि मैंने कहा था यह स्वीकृति अक्टूबर सन् 1947 के अन्त में किसी समय दी गई थी।

नियमों के लेने के पूर्व मुझे बता देना चाहिये कि उन समस्त राज्यों को, जो भारतीय अधिराज्य में प्रवेश कर चुके हैं, संविधान-सभा के नियमों की अनुसूची में सम्मिलित कर लिया गया है। उनमें से एक राज्य काश्मीर है। साथ ही साथ, सदन के समक्ष संविधान का जो प्रारूप प्रस्तुत किया गया है उसकी प्रथम अनुसूची के भाग 3 में माननीय सदस्यों ने यह देखा होगा कि काश्मीर उन राज्यों में से है जो उस अनुसूची में रखे जायेंगे। परन्तु जहां तक प्रतिनिधान का सम्बन्ध है उन कठिनाइयों के कारण प्रक्रिया में समय-समय पर परिवर्तन हो चुका है जो उन नियमों के परिपालन करने के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई थीं, जिनको आरम्भ में इस सदन में राज्यों को प्रतिनिधि भेजने के लिये बनाया गया था। इस प्रकार का अन्तिम नियम संविधान-सभा के उन नियमों में नियम संख्या 4 पर है जो आजकल प्रवर्तन में है। इस नियम में राज्यों के बांट में आने वाले स्थानों में से आधे से अन्यून स्थानों की पूर्ति तत्सम्बन्धी राज्यों के विधान मंडलों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा की जायेगी और शेष के लिये स्वयं शासक द्वारा नाम निर्देशित किये जायेंगे।

जहां तक कश्मीर का इस विषय से सम्बन्ध है, इस राज्य के लिये इन नियमों के अन्तर्गत बांट में आने वाले स्थानों की संख्या चार है, अर्थात् जनसंख्या के प्रत्येक दस लाख पर एक। यदि इस नियम का पालन किया जाता है तो इस संख्या का आधे से अन्यून का निर्वाचन विधान मंडल द्वारा होना चाहिये। काश्मीर के संविधान में, एक विधान सभा है जिसको प्रजा-सभा कहा जाता है। इस सभा के निर्वाचन लगभग दिसम्बर सन् 1946 तथा जनवरी सन् 1947 में हुए और इन निर्वाचनों के समाप्त होते ही यह सभा बनाई गई। इसके दो या तीन माह के पश्चात् एक बैठक हुई जिसको राज्य के आय-व्यय के लेखे को पारित करने के लिये बुलाया गया। यह सब शक्ति हस्तान्तरण करने के पूर्व हुआ और देशी राज्यों की स्थिति में जो परिवर्तन हुआ वह शक्ति हस्तान्तरण के पश्चात्। 15 अगस्त सन् 1947 के पश्चात् काश्मीर अपने पैरों पर खड़ा रहा जब तक कि सन् 1947 के अक्टूबर के अन्त में वह भारत में प्रविष्ट न हुआ। लगभग अप्रैल सन् 1947 ई. से इस प्रजा-सभा की कोई बैठक नहीं हुई। अक्टूबर सन् 1947 से काश्मीर राज्य के पश्चिमी भाग पर जो आक्रमण हुए तथा उसके बाद जो कुछ हुआ उसके कारण वहां बहुत कुछ झगड़े फसाद रहे, इन सब बातों से माननीय सदस्यगण परिचित हैं ही। बड़ी कठिन परिस्थिति रही।

तब से इस सभा की कोई सत्ता नहीं रही। शायद उसकी सत्ता केवल कागजी ही है, वास्तव में तो वह मृतवत् ही है। अक्टूबर सन् 1947 में काश्मीर राज्य भारत में प्रविष्ट हुआ। इसके पश्चात् ही महाराज ने एक आपाती प्रशासन की स्थापना की जिसका मुखिया शेख मुहम्मद अब्दुल्ला हुआ जो काश्मीर के सर्वाधिक लोकप्रिय पक्ष का नेता था। मार्च 1948 में उन्होंने इस आपाती प्रशासन के स्थान में एक सरकार बनाई जिसको उन्होंने लोकप्रिय अन्तर्वर्ती सरकार का नाम दिया जिसमें एक मंत्रिमंडल भी है। उन्होंने शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री का पद स्वीकार करने के लिये आमंत्रित किया और अपने सहकारी पसन्द करने का कार्य भी उन पर ही छोड़ा। संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धांतानुसार सरकार को कार्य करना था। इस नयी सरकार की स्थापना करते समय जो उद्घोषणा उन्होंने की थी उसमें उन्होंने प्रजा-सभा का कोई उल्लेख नहीं किया, परन्तु शान्ति स्थापित होने के पश्चात् ही इस नई सरकार को एक राष्ट्रीय सभा बुलाने के लिये आमंत्रित किया जो राज्य के लिये संविधान बनाने के कार्य में अग्रसर हो। वर्तमान काल में प्राचीन प्रजा-सभा मृतवत् है, नई राष्ट्रीय सभा अस्तित्व में न आ पाई क्योंकि इस सीमा तक शान्त और प्रशान्त-वातावरण ही न हो पाया तथा इसका कारण आर्थिक तथा राजनैतिक साम्य भी था, जिसके द्वारा इस राष्ट्रीय सभा को बुलाना न्यायमुक्त हो सकता है।

इन परिस्थितियों में वर्तमान तथ्यों पर विचार करते हुए हमें कोई ऐसी रीति पसन्द करनी है जिसके द्वारा इस सभा में हम उनके प्रतिनिधियों को ला सकें। मैं यह समझता हूं कि माननीय सदस्य इस बात को स्वीकार करेंगे कि काश्मीर जो कि अब भारत का एक अंग है उसके प्रतिनिधि इस सभा में होने चाहियें। मैं चाहता था कि उसके प्रतिनिधि इस समय से बहुत पूर्व आ जाते पर इसमें कई रुकावटें हुईं, पर आज हम इस स्थिति में हैं कि इस सदन में चार व्यक्तियों को ला सकते हैं जो कश्मीर की जनसंख्या के समुचित प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह है कि यद्यपि किसी दशा में भी इनमें से दो प्रतिनिधि तो वर्तमान नियमों के अन्तर्गत वे व्यक्ति होने चाहियें जिनका शासक द्वारा नाम-निर्देश किया जायेगा पर हम यह सुझाव रख रहे हैं कि चारों व्यक्तियों का अपने प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर शासक द्वारा नाम-निर्देश किया जाये। दैवयोग से प्रधानमंत्री वह व्यक्ति है जो राज्य की सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था का प्रतिनिधान करता है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी याद रखना है कि प्रधानमंत्री और उसकी सरकार का आधार प्रजा सभा नहीं है, जो मर चुकी है वरन् उनका आधार यह तथ्य है कि वे राज्य के सबसे बड़े राजनैतिक दल का प्रतिनिधान करते हैं। अतः केवल यही ठीक है कि इस दल का मुखिया जो प्रधानमंत्री भी है उसे इस विषय पर कि संविधान-सभा में काश्मीर के उचित प्रतिनिधि कौन हों शासक को मंत्रणा देने का विशेषाधिकार हो। इसी कारण हमने यह सुझाव रखा है। वर्तमान परिस्थितियों में यही सब से अच्छी रीति है जिसका पालन किया जा सकता है। इससे इस संविधान सभा तथा काश्मीर की सरकार और जनता में कुछ घनिष्ठ सम्बन्ध हो जायेगा। ये प्रतिनिधि यहां आयेंगे और इस सदन की आगे की कार्यवाही में भाग लेंगे। जैसा कि सदस्यों को विदित होगा प्रान्त

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

और राज्य सम्बन्धी अधिकांश अनुच्छेदों पर अभी विचार होगा और यही ठीक है कि काश्मीर उन वाद-विवादों में भाग ले जिनमें इन अनुच्छेदों को अन्तिम रूप दिया जायेगा।

अब मैं और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं। फिर भी, एक संशोधन को विचार में रखते हुए, जिसकी कि सूचना दी जा चुकी है, मैं एक छोटी सी बात स्पष्ट करना चाहूंगा। यह सुझाया गया है कि काश्मीर के स्थान में हम जम्मू और काश्मीर रखें। इसमें संदेह नहीं कि 'जम्मू और काश्मीर' राज्य की अपेक्षाकृत सुन्दर व्याख्या करते हैं। पर मैंने इस विशिष्ट प्रस्ताव में काश्मीर शब्द का क्यों प्रयोग किया है इसका कारण यह है कि समस्त विधि सम्बन्धी अधिनियमों तथा नियमों में, जो अब तक बने हैं तथा जिनमें इस विशिष्ट राज्य का उल्लेख करना पड़ा है, इसी शब्द का प्रयोग किया गया है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या काश्मीर शब्द में अथवा उसके अर्थ में दोनों जम्मू और काश्मीर निहित हैं?

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** काश्मीर का अर्थ जम्मू और काश्मीर से है। उदाहरणार्थ भारतीय सरकार के अधिनियम में यदि आप उस अनुसूची को देखें जिसमें राज्यों के नाम दिये गये हैं तो उस में यह मिलेगा कि इस राज्य को काश्मीर कहा गया है। संविधान के प्रारूप की अनुसूची में काश्मीर के रूप में इसका उल्लेख है। संविधान-सभा के नियमों की संलग्न सूची में इसको काश्मीर ही कहा गया है। अत: मैं समझता हूं कि इन परिस्थितियों में केवल काश्मीर शब्द का प्रयोग ही सर्वोत्तम होगा तथा संशोधन और जो शब्द मैंने प्रयुक्त किया है उन दोनों का बिल्कुल एक ही अर्थ है। अत: मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि राज्य के इस नाम काश्मीर को वे रहने दें क्योंकि यदि आप इसे बदलते हैं तो हमें और बातों को बदलना होगा जो हमारी विधियों तथा नियमों में पहले से हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** क्या मैं माननीय सदस्य के भाषण में हस्तक्षेप कर सकता हूं? प्रस्ताव में यह दिया हुआ है कि काश्मीर को चार स्थान बांट में दिये जायेंगे और उनको इस संविधान-सभा में भेजा जायेगा। माननीय सदस्य ने अभी यह स्पष्ट किया है कि जैसा कि अन्य विधियों तथा अधिनियमों में दिया हुआ है 'काश्मीर' शब्द का अर्थ जम्मू और काश्मीर है। यह सोचा गया है कि प्रतिनिधि चार हों। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इन चार प्रतिनिधियों के इस प्रकार नाम निर्देशित किये जायेंगे कि जम्मू और लद्दाख का भी इनके द्वारा प्रतिनिधान हो?

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** इस प्रस्ताव में 'काश्मीर' का अर्थ है समस्त जम्मू और काश्मीर और उस राज्य की सरकार में जो अब तक है उस पर सम्पूर्ण प्रभुत्व। विचार यह है कि चार व्यक्ति छांटे जायें जिन पर समस्त राज्य के हितों के प्रतिनिधान करने का विश्वास किया जाये—केवल जम्मू और लद्दाख का ही नहीं वरन् मैं विश्वास करता हूं कि ऐसा व्यक्ति जो मीरपुर—जम्मू क्षेत्र के हितों का भी प्रतिनिधान करे—यदि प्रधानमंत्री उसे ऐसा व्यक्ति समझकर उसका नाम निर्देशन करना पसन्द करता है कि

वह समस्त राज्य के हितों का प्रतिनिधान कर सकता है तो ऐसे किसी व्यक्ति की सिफारिश करने में उसे कोई रुकावट नहीं होगी। अतः जो कुछ करने का हम विचार कर रहे हैं वह यही है। हम ऐसी किसी बात को नहीं मानते हैं। जो अभी-अभी सैनिक कार्यों के निलम्बन करने के फलस्वरूप हो गई हो। हम जो कुछ चाहते हैं वह यह है कि सभा में उन व्यक्तियों को लाया जाये जो समूचे राज्य का प्रतिनिधान करेंगे। और हमारी सम्मति में प्रधानमंत्री, जो सरकार का प्रतिनिधान करता है तथा सबसे बड़े राजनैतिक दल का भी प्रतिनिधान करता है, सर्वोत्तम व्यक्ति है जो शासक को ऐसी सिफारिश कर सकता है जिस पर वह नाम निर्देशित करेगा। श्रीमान्, अभी मैं और कुछ अधिक नहीं कहना चाहता हूं। मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रांत : मुस्लिम): श्रीमान्, यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं अच्छे तर्कों से आधार पर इस प्रस्ताव का विरोध करने की प्रार्थना करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन पेश हो जाने के पश्चात् आप इसका विरोध कर सकते हैं। कुछ संशोधनों की सूचना मिल चुकी है और...

***मौलाना हसरत मोहानीः** श्रीमान्, क्या आप मुझे यही और अभी अपने विरोध प्रकट करने की आज्ञा देंगे? मैं संशोधनों के लिये नहीं ठहरना चाहता हूं क्योंकि संशोधनों से मेरे विरोध का कोई सम्बन्ध नहीं है।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि हमें प्रस्ताव पर जो संशोधन है उनको लेना चाहिये। जब संशोधन पेश किये जा चुकेंगे और अब समूचे प्रश्न पर विचार-विमर्श होगा उस समय मौलाना अपने विचार प्रकट कर सकते हैं।

श्री कामत अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): शाब्दिक होने के कारण तथा श्री आयंगर ने जो कुछ अभी कहा है उस पर विचार करते हुए मैं उस संशोधन को पेश नहीं करना चाहता हूं, पर चूंकि मैं इस प्रस्ताव पर बोलना चाहता हूं मैं आशा करता हूं कि बाद में आप मुझे दृष्टि में लाने की कृपा करेंगे।

***अध्यक्षः** मैं कोई वचन नहीं देता हूं।

प्रो. शाह अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***मौलाना हसरत मोहानीः** मुझे यह संकेत करना है कि मैं इस रूप में इस प्रस्ताव का विरोध करना चाहता हूं कि आप इस समय उन बातों को पेश करने का अवसर दें।

***अध्यक्षः** आप उस समय इस प्रस्ताव का विरोध कर सकते हैं। इस समय तो हम पहले संशोधनों को लेंगे। उनको पेश किया जायेगा और उसके पश्चात् आप जो चाहें कह सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में से 'all' शब्द को निकाल दिया जाये।''

[प्रो. के.टी. शाह]

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में जहां-जहां 'Kashmir' शब्द आया है उसके पूर्व 'Jammu and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में जहां 'may be' शब्द प्रथम बार आया है उसके स्थान में 'may, pending the holding of a plebiscite, under the auspices of the United Nations' Organisation, and without prejudice to the result of that plebiscite be' शब्द रखे जायें।''

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'by nomination' शब्दों के स्थान में 'be elected by the Praja Sabha of the State of Jammu and Kashmir' शब्दों को रखा जाये।''

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'nominated' शब्द के स्थान में 'elected' शब्द रखा जाये।''

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'by the Ruler of Kashmir on the advice of his Prime Minister' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

अध्यक्ष महोदय, जो कार्य मैंने अपने ऊपर लिया है उसकी गम्भीरता तथा कोमलता के प्रति मैं पूर्णरूप से जागरूक हूं।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** क्या मैं इस संशोधन के माननीय प्रस्तावक से प्रार्थना कर सकता हूं कि उनके संशोधनों के बाद प्रस्ताव का क्या रूप होगा उसे सदन के समक्ष पढ़ कर सुनायें।

***प्रो. के.टी. शाह:** बहुत अच्छा, वह इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''Notwithstanding anything contained in para 4, the seats in the Assembly allotted to the State of Jammu and Kashmir may, pending the holding of a plebiscite under the auspices of the United Nations, Organisation, and without prejudice to the results of that plebiscite, be filled by election by the Praja Sabha of Jammu and Kashmir and the representatives of the State to be chosen to fill such seats may be elected.''

श्रीमान्, मैं कह रहा था कि इस संशोधन को प्रस्तुत करते हुए और उन तर्कों को प्रस्तुत करते हुए जो इस सदन को अपने विचारानुकूल बनाने के लिये मुझे उसके समक्ष रखने हैं मैंने जो कार्यभार अपने ऊपर लिया है उसकी गंभीरता तथा कोमलता से मुझसे अधिक और कोई व्यक्ति परिचित नहीं हो सकता है। इस कार्य को गुरुता तथा कोमलता से इस प्रकार परिचित होने पर भी श्रीमान्, मैं आपको आश्वासन देता हूं कि मैं किसी प्रकार से भी किसी ऐसे पद अथवा वाक्य अथवा भावभंगी अथवा ध्वनि का प्रयोग नहीं

करूंगा जो तर्कों में किंचित मात्र आवेग तथा विरोध का आभास कराये। मैं जानता हूं कि इस विषय को एक दीर्घकालीन विरोध द्वारा बहुत गहरा रंगा गया है। श्रीमान्, मैं इस बात से भी परिचित हूं कि इस विषय पर तीव्र मनोमालिन्य होगा, अतः जहां तक मेरे बस की बात है मैं आपको पुनः आश्वासन देता हूं कि मैं एक भी ऐसा वाक्य प्रयोग नहीं करूंगा और न कोई ऐसा हाव-भाव दिखाऊंगा जो इस सदन की प्रतिष्ठा के विरुद्ध किसी प्रकार का आवेग उत्पन्न करे तथा जो इस विषय की गम्भीरता से परे हो।

अपने तर्कों को अग्रसर करने के पूर्व, क्या मैं विनम्रतापूर्वक इस विषय पर भाषण देने के लिये अपने प्रमाण-पत्रों के रूप में कुछ कह सकता हूं।

श्रीमान्, अब तक लगभग 15 वर्ष अथवा इससे भी अधिक समय से मैं काश्मीर राज्य तथा उसके शासन से परिचित रहा हूं। इस विषय से सम्बन्धित मुख्य दलों से मैं परिचित हूं और उनके सहयोग में काम करता रहा हूं। चाहे वह कितने ही तुच्छ रूप में क्यों न हो पर जिस दिन से वह प्रारूप के रूप में था उसी दिन से तत्कथित 'नये काश्मीर' की रूपरेखा बनाने में मैंने सहायता दी है, जबकि वर्तमान प्रधानमंत्री बम्बई पधारे थे और पन्द्रह दिन तक इस विषय में मुझसे परामर्श करने की कृपा की थी। पूर्ववर्ती काश्मीर सरकार के योजना निर्माण कार्य में परामर्शदाता बनने के निमंत्रण प्राप्त करने का भी गौरव मुझे मिला था और इस सम्बन्ध में वहां की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिये, जनता को पहचानने के लिये, प्रशासन से परिचय प्राप्त करने के लिए मैं काश्मीर राज्य में गया और वह भी केवल एक यात्री के दृष्टिकोण से नहीं वरन् उक्त विषयों के एक निकटस्थ विद्यार्थी के दृष्टिकोण से। सम्भव है किताबों का कीड़ा होने के नाते मुझे पहले इन बातों से परिचय प्राप्त करने का कुछ अवसर मिला था।

श्रीमान्, कदाचित् यह मेरा दुर्भाग्य है कि गत कुछ वर्षों की प्रगति के पश्चात् भी मैं इस विषय से सम्बन्धित रहा और इस तर्क को प्रस्तुत करते समय मैं आपके समक्ष कुछ ऐसे विचार रखने का प्रयत्न करूंगा कि जिनसे मेरा विश्वास है कि आपको यह प्रकट हो जायेगा कि इस विषय पर मैं जो कुछ कहता हूं वह समाचार-पत्र की शीर्ष रेखाओं में केवल थोथे ज्ञान के आधार पर नहीं है वरन् वह इस विषय के जिस पर हम विचार कर रहे हैं कुछ गम्भीर अध्ययन, निकट परिवेक्षण तथा वैयक्तिक ज्ञान के आधार पर है।

श्रीमान्, इस भूमिका के पश्चात् अब मुझे उस संशोधन की ओर अग्रसर होने दीजिये जिसे मैंने सुझाया है। श्रीमान्, सर्वप्रथम मेरा सुझाव यह है कि 'all' शब्द को निकाल दिया जाये। 'all' के पश्चात् definite article 'The' तो रहेगा ही। अतः इस पद के प्रयोग किये बिना भी उसमें 'all' निहित हो ही जायेगा। यह केवल शाब्दिक परिवर्तन ही नहीं है जिसे कि मैं सुझा रहा हूं। जब मैं अपने उद्देश्य को आगे विस्तारपूर्वक प्रकट करूंगा उस समय कदाचित् आप देखेंगे कि इस विचार में, कि 'all' शब्द निकाल दिया जाये, कुछ सार है।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, इसके पश्चात् मेरा अगला सुझाव है कि राज्य का नाम बदल दिया जाये और उसको और अधिक रूप में ''जम्मू और काश्मीर का राज्य'' कहा जाये। राज्य का सरकारी नाम यही है और इस प्रकार के सरकारी लेख में राज्य के सही नाम को हम क्यों न रखें इसके विरुद्ध मुझे कोई तर्क नहीं सुझाई देता है। श्रीमान्, मैं आपको पुनः आश्वासन देता हूं कि यह पदावली अथवा नाम अथवा केवल शाब्दिक संशोधन का विषय नहीं है। जैसा कि मैं आपको बताऊंगा इस विषय में कुछ ऐसा महत्त्व है जो इस बात को बहुत अधिक आवश्यक बना देता है कि आप इस प्राचीन राज्य के नाम के एक भाग को न छोड़ें और यहां तक कि उसके प्रथम भाग को तो न छोड़ें।

केवल उसे कश्मीर राज्य कहने से तो आप एक अनर्थ अथवा एक त्रुटि को स्थायी रूप दे रहे हैं जो कि माननीय प्रस्तावक महोदय के अनुसार प्रकट रूप से सभी अभिलेखों में हो गई है। श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि यदि एक बार हमने कोई गलती की, यदि हम राज्य के एक भाग के महत्त्व से—उस भाग से सम्बन्धित महान् आत्माओं के महत्त्व से प्रभावित हो गये तो क्या यह इस बात के लिये कोई तर्क है कि हम उस राज्य के दूसरे भाग को, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, भूल जायें और इस सरकारी अभिलेख मैं उस त्रुटि को स्थायी बनाये रखें और केवल ''काश्मीर'' ही कहें जबकि हमारा वास्तविक आशय ''जम्मू और काश्मीर'' से है?

श्रीमान्, यह मान लिया गया है, यह एक साधारण ज्ञान का विषय है तथा यह एक ऐसा तथ्य है जिसे इस संकल्प के माननीय प्रस्तावक महोदय तक ने अस्वीकार नहीं किया है कि राज्य का सही नाम यही है। और वे लोग जिन्हें 'काश्मीर छोड़ो' के सम्बन्ध में राज्य के वर्तमान प्रधानमंत्री का संघर्ष याद है यह अनुभव करेंगे कि जो घटनाचक्र हुआ है उसमें यह हो सकता है कि यदि आप इसी रूप में इसका नाम रखेंगे तो जहां-जहां यह नाम प्रयुक्त होने दिया जायेगा वहां इससे दुःखद मिथ्या भ्रम हो सकता है और हमारे सरकारी अभिलेख कुरूप हो जायेंगे।

श्रीमान्, आप बाद में देखेंगे कि, जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने कहा है कि यह विषय केवल शाब्दिक परिवर्तन का है, यहां यह बात नहीं है। इस बात में एक महत्त्व है जिसके प्रति मैं आशा करता हूं कि यह सदन जैसे हम आगे अग्रसर होंगे वैसे उसे समझ जायेगा। जम्मू और काश्मीर के राज्य को जम्मू और काश्मीर वे रूप में ही ठीक-ठीक कहा जाता है—यह कहना चाहिये कि एक ही राज्य क्षेत्र के अन्दर उसी प्रकार से दो राज्य हैं जैसे कि प्रथम स्टूआर्ट के अधीन इंग्लैंड और स्कॉटलैंड दो राज्य थे। उसका शासक जेम्स स्कॉटलैंड का छठा शासक और इंग्लैंड का प्रथम शासक था। एक ही व्यक्ति दो मुकुट धारण करता था। जम्मू और काश्मीर लगभग सन् 1933 के साम्प्रदायिक विप्लव तक समस्त व्यवहार्य प्रशासनीय प्रयोजनों के लिये वस्तुतः न्यूनाधिक रूप में दो स्पष्ट भागों में विभाजित था यद्यपि थे वे दोनों एक ही शासक के अधीन।

मुझे विश्वास है कि सदन के समक्ष यह सिद्ध करने के लिये, कि नाम का विषय केवल शाब्दिक संशोधन का विषय ही नहीं है, वरन् उसके पीछे एक महत्त्व है—घटनाचक्र

में एक ऐसा महत्त्व जो केवल इस सदन तथा इस देश तक ही सीमित नहीं है, मैं बहुत कुछ कह चुका हूं। इसका प्रभाव इस देश के बाहर भी है जैसा कि मैं बाद में बताने का प्रयत्न करूंगा। अतः हमें प्रत्येक शब्द के प्रयोग में बड़ा सजग रहना चाहिये जिससे कि हमारा नाम, हमारी समस्त पदावली परिस्थितियों तथा सही तथ्यों के अनूकूल हो।

श्रीमान्, इसके पश्चात् मैं एक बहुत ही कठिन तथा कोमल विषय पर आता हूं और वह यह है कि संयुक्तराष्ट्र संघ के तत्वावधान में जनमत लेने तक लम्बित...

***डा. बी. पट्टाभि सीतारमैया** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस समय मैं एक औचित्य प्रश्न उठाना चाहता हूं। इस प्रस्ताव में काश्मीर राज्य को जो प्रतिनिधान देना प्रस्तावित किया जा रहा है उसका जनमत तथा संयुक्तराष्ट्र संघ से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं समझता हूं कि इस संशोधन को नियम विरुद्ध घोषित किया जाये।

***अध्यक्षः** इस औचित्य प्रश्न पर माननीय सदस्य को क्या कहना है?

***प्रो. के.टी. शाहः** भारत के सर्वोच्च प्राधिकारी की घोषणा भी यही है कि जिस दिन प्रवेश करने पर सहमति प्रकट की गई थी उस दिन महाराजा जो कि पूर्णरूप से संवैधानिक प्रमुख था उसके द्वारा किया गया राज्य का प्रवेश जनमत के फल द्वारा समर्थन के अधीन था।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह बिल्कुल झूठ—शत-प्रतिशत झूठ है। प्रो. शाह द्वारा ऐसा कथन सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ है, अचम्भा हुआ है मैं चकित हुआ हूं।

***प्रो. के.टी. शाहः** यदि मैं गलत कह रहा हूं तो वह सही किया जा सकता है। हमने स्वयं संयुक्त राष्ट्र के जनमत लेने के निर्णय को स्वीकार कर लिया है और एक प्रशासक नियुक्त कर दिया गया है। यदि मैं गलती पर हूं तो मैं आपके अधिकार में हूं।

***अध्यक्षः** बात यह है कि क्या प्रवेश किसी शर्त के अधीन था। जैसा कि मुझे प्रधानमंत्री से ज्ञात हुआ है प्रवेश बिना किसी शर्त के अधीन तथा सम्पूर्ण है। जनमत के फलस्वरूप इस प्रवेश का फल बदला जा सकता है, पर प्रवेश पूर्ण तथा अन्तिम है। अतः प्रवेश का प्रश्न ही नहीं उठता है।

***प्रो. के.टी. शाहः** यह सुझाव मैं कदापि नहीं दे रहा हूं कि जम्मू और काश्मीर के प्रतिनिधि यहां नहीं आयें।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** डा. पट्टाभि सीतारमैया ने जो औचित्य प्रश्न उठाया है वह इस रूप में विषय से अति संगत प्रतीत होता है कि यह संकल्प प्रवेश के उस अधिनियम के फलस्वरूप है जिसको भारतीय सरकार तथा संविधान-सभा ने स्वीकार कर लिया है और इस सम्बन्ध के कारण ही हमारी सभा में काश्मीर और जम्मू राज्य के प्रतिनिधियों को लाने के लिये उपबंध बना रहे हैं। जनमत से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसा कि प्रधानमंत्री ने संकेत किया है प्रवेश पूर्णरूप से तथा महाराजा की ओर से निष्कपट

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

रूप से हो गया है। सम्भव है प्रवेश का फल जनमत द्वारा पलट दिया जाये—पर इस बात का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है जिस पर हम विचार कर रहे हैं।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं कि संशोधन का यह भाग नियम विरुद्ध है। हमें यह देखना है कि इस प्रस्थापना से इसका कोई सम्बन्ध भी है। यदि मुख्य प्रस्थापना से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है तो इस संशोधन को नियम विरुद्ध घोषित कर देना चाहिये। जो सूचना माननीय प्रधानमंत्री ने दी है तथा जो सूचना श्रीमान्, आपने अनुग्रहपूर्वक दी है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीर का प्रवेश बिना किसी शर्त के हुआ है। अब जबकि प्रवेश बिना किसी शर्त के है तो जनमत के प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुख्य प्रस्थापना में कहा गया है कि काश्मीर राज्य के बांट में आने वाले सभा के स्थानों की पूर्ति नाम-निर्देश द्वारा की जायेगी और इन स्थानों की पूर्ति के लिये राज्य के जो प्रतिनिधि चुने जायेंगे उनका शासक द्वारा नाम-निर्देश किया जायेगा। इसके लिये कोई अवधि नहीं है कोई शर्त नहीं है। ऐसी कोई शर्त नहीं रखी जा सकती है क्योंकि जैसा कि हमें अभी बताया गया है प्रवेश बिना किसी शर्त के हुआ था। किसी ऐसी बात को सोचकर जिसका अस्तित्व नहीं है और जो इस सदन की सूचना में लाये गये तथ्यों द्वारा आवश्यक नहीं है, मैं विनम्र निवेदन करता हूं कि यह संशोधन अवश्य ही नियम विरुद्ध है।

***अध्यक्ष:** मैं इस बात को मानने के लिये उद्यत हूं कि डा. पट्टाभि सीतारमैया द्वारा उठाया गया औचित्य प्रश्न सुदृढ़ तथा मान्य है। काश्मीर का प्रवेश बिना किसी शर्त के था और यहां हमारा जिस बात से सम्बन्ध है वह उस राज्य का इस सभा में प्रतिनिधान है। जनमत कब होगा और उसका क्या फल होगा इससे यहां हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा सम्बन्ध तो केवल इस सदन में उस राज्य के प्रतिनिधान से है। जो रीति सुझाई गई है वह प्रस्तावक के पक्ष में है। उस रीति पर माननीय सदस्य अपना संशोधन पेश कर सकते हैं पर उन सदस्यों की स्थिति के सम्बन्ध में कोई शर्त नहीं रख सकते हैं जो इस सदन में भेजे जायेंगे। उनकी स्थिति तथा पदावधि पर बिना किसी शर्त के लगाये वे इस सदन में उसी प्रकार आसन ग्रहण करेंगे जैसे अन्य सदस्य। अत: संशोधन का वह भाग नियम विरुद्ध घोषित किया जाता है।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं आपके नियम निर्देश को शिरोधार्य करता हूं, अत: संशोधन के अन्य भागों पर ही अपने आपको सीमित रखूंगा। इससे संशोधन को क्षति अवश्य होगी कम से कम इस रूप में कि वह मेरे तर्क का एक पूर्ण अंग था। फिर भी जितना मैं कर सकता हूं उतना अपने संशोधन के इस महत्त्वपूर्ण अंग के निकाल दिये जाने पर भी अपने तर्क को स्वयं सम्पूर्ण बनाऊंगा।

श्रीमान्, आगे के संशोधन में यह सुझाया गया है कि प्रतिनिधियों का चुनाव जम्मू और काश्मीर की प्रजा सभा द्वारा हो। श्रीमान्, यह एक स्वीकृत तथ्य है कि जैसा कि माननीय प्रस्तावक महोदय ने स्वयं घोषित किया है कि राज्यों का प्रतिनिधान कुछ निर्वाचन द्वारा और कुछ शासक द्वारा नाम-निर्देशित करने से प्राप्त किया जाता है। और फिर प्रवेश

तिथि से इस वर्तमान सुझाव तक कि प्रतिनिधियों को चुन लिया जाये हमने उन्नीस माह अथवा इससे अधिक समय बीत जाने दिया है। श्रीमान्, मैं जानता हूं कि ऐसी परिस्थितियां तथा प्रगति रही हैं वजन के कारण इस सभा में काश्मीर का प्रतिनिधान प्राप्त करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है।

जहां लोकप्रिय विधान मंडल थे उनको आधे प्रतिनिधियों का निर्वचन करने दिया गया, शेष आधों का शासक द्वारा नामनिर्देश किया गया। इस विषय में उस कल्याणकारी सिद्धांत को तिलांजलि क्यों दी जा रही है? माननीय सदस्य ने यह कहा ही है कि काश्मीर की प्रजा-सभा का निर्वाचन सन् 1946-47 में हुआ था अतः वह अब तक अपने सामान्य रूप में वर्तमान है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या यह वर्तमान है? उसमें कितने सदस्य है?

***प्रो. के.टी. शाहः** यह हो सकता है कि समस्त सदस्य उस क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत न हों जहां तक कि उसका शासक के लेख द्वारा प्रसार होता है। यह कम से कम इस पारिभाषिक स्थिति में परिवर्तन नहीं करता है कि जम्मू और काश्मीर के विधायी निकाय की सत्ता है और भविष्य में इन विषयों में जिस उदाहरण का हमने पालन किया है उसके अनुसार इस निकाय को कम से कम आधे सदस्यों के निर्वाचन करने का अधिकार है मैं नहीं समझ पाता हूं कि केवल कश्मीर के लिये इसका क्यों त्याग किया जाये।

मूल प्रस्ताव में कश्मीर के सब प्रतिनिधियों का नाम-निर्देशित किया जाना अपेक्षित है और वह भी प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर। हमने यह मान लिया है कि वह सरकार अथवा वह प्राधिकारी काश्मीर की जनसंख्या के बहुमत का प्रतीक है। यदि नये निर्वाचन होते तो यह अवश्यमेव स्पष्ट प्रकट हो जाता। पर परिस्थतियां बदल गई और राष्ट्रीय पक्ष प्रबल हो गया। सदन को यह तथ्य याद रखना चाहिये कि काश्मीर और जम्मू दोनों को मिला कर उनकी जनसंख्या में लगभग 76 प्रतिशत मुसलमान और 24 प्रतिशत डोगरा तथा अन्य गैर-मुस्लिमों को मिलाकर हिन्दू हैं। यह तो इस सदन को अपनी बुद्धिमानी से निर्णय करना है कि जनसंख्या के इस अनुपात के होते हुए और इस अरसे में जो कुछ घटनायें हुई हैं उनके होते हुए क्या यह सम्भव है कि, जब स्वयं सीमाप्रांत संकट में है और जबकि यद्यपि 'युद्ध रोकने' की घोषणा करने पर भी संधिपत्र पर अभी तक हस्ताक्षर नहीं हुए हैं और राज्य में शान्ति नहीं हो पाई है, ठीक-ठीक आधार पर निर्वाचन हो सके। काश्मीर को जो संकट है, अथवा काश्मीर में किसी भयंकर दुर्घटना के कारण भारत को जो संकट है उनको मेरे शब्दों द्वारा कहे जाने की अपेक्षा इस सदन की कल्पना पर छोड़ना अच्छा है।

यद्यपि इस समय इस विषय को जटिल बनाने का मैं इच्छुक नहीं हूं पर जो परिणाम हो सकते हैं उनकी गुरुता मुझे इस सदन को बतानी चाहिये। इस सदन के समक्ष यह प्रश्न रखने के लिये मैं बाध्य हूं कि यदि हम कुछ निर्वाचन द्वारा और कुछ शासक की इच्छानुसार नाम-निर्देशन द्वारा निर्वाचन की प्रथा को त्यागते हैं न कि प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर शासक द्वारा सबका नाम निर्देशन जो यहां अपेक्षित हैं तो यह विषय इस सदन के

[प्रो. के.टी. शाह]

निर्णय का है। मैं यह सुझाव देने के लिये प्रेरित हुआ हूं कि वातावरण की असामान्य परिस्थिति के कारण सबका निर्वाचन हो। दूसरे राज्यों में जैसा सामान्य तथा शान्त वातावरण है यदि इस राज्य में भी वही वातावरण होता, यदि इस विषय में किसी तीसरे दल के बलात् प्रवेश द्वारा परिस्थिति को इतना जटिल नहीं बनाया जाता तो मैं भी उसी पूर्वोदाहरण का पालन करता और इस बात की अपेक्षा करता कि कम से कम कुछ प्रतिनिधि लोक प्रतिनधि हों जिनका उचित रूप में उनके प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचन हो। परन्तु वहां आज जैसी परिस्थिति है तथा जो परिस्थितियां वहां उत्पन्न हो गई हैं उनके अनुसार समस्त लोक प्रतिनिधियों का निर्वाचन होना चाहिये। मेरा यह निवेदन है। जब मैं यह कहता हूं कि हम प्रजातंत्रात्मक सिद्धांतों अथवा न्याय के विचार अथवा दूरदर्शिता अथवा बुद्धिमानी का इस विषय में परित्याग नहीं करेंगे यदि हम यह कहें कि इस सदन के सब प्रतिनिधियों को काश्मीर की जनता और केवल काश्मीर की जनता ही निर्वाचन करे तो मैं बहुत कुछ अधिक नहीं कह रहा हूं। यदि इस पक्ष का यह दावा है कि वह काश्मीर के लोगों के एक बहुत बड़े वर्ग तथा समस्त काश्मीर के लोगों का प्रतिनिधान करता है तो इस बात से डरने का कोई कारण नहीं है कि वे अपनी इच्छाओं के अनुसार अपने प्रतिनिधि नहीं भेज सकते हैं अत: प्रतिनिधियों के निर्वाचन का न कि नाम-निर्देशन का जो सुझाव मैं रख रहा हूं उसे उन्हें नहीं टालना चाहिये।

इस विषय में मैं इस ओर संकेत करने के लिये विवश हूं कि विगत साढ़े तीन वर्ष से जम्मू और काश्मीर के इतिहास में होने वाली प्रगतियों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। आपको उस आन्दोलन की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये जो फरवरी सन् 1946 ई. में आरम्भ किया गया था और जिसमें उत्तरदायित्वपूर्ण पक्ष के नेता ने ''कश्मीर छोड़ो'' का युद्ध छेड़ा था जिसके फलस्वरूप घटनाओं में प्रगति हुई और तब से जो कठिनाइयां हुई उनका प्रादुर्भाव हुआ। मैं यह नहीं चाहता हूं कि यह सदन पक्ष का किसी ऐसी बात में साथ दे जो इस प्रकार की प्रतीत हो कि मानो वह किसी एक व्यक्ति की इच्छाओं के प्रति समर्पण हो चुकी हो कि तब तक कुछ नहीं हो सकता जब तक कि महाराजा का निष्कासन न हो अथवा उसको पूर्ण शक्ति न दी जाये। उसे काश्मीर की जनता का पूरा विश्वास प्राप्त है या नहीं यह बात तो अभी सिद्ध होने को शेष है। मैं जानता हूं कि उसका अनुसरण करने वाले बहुत होंगे। पर साथ ही साथ यदि आप संदेहरहित प्रमाण चाहते हैं तो ऐसी कोई बात नहीं है कि सीमित मताधिकार के अन्तर्गत हो जो कि प्रचलित है आप निर्वाचन के लिये क्यों नहीं निमंत्रण भेजें। यदि आप वयस्क मताधिकार रखते हैं तो और भी अच्छा है। परन्तु सन् 1946 के सीमित मताधिकार के अन्तर्गत भी यदि आप निर्वाचन करें तो आपको सच्चे लोक-प्रतिनिधि मिल जायेंगे।

आपको यह भी नहीं भूलना चाहिये कि जो घटनायें वहां हुईं हैं उनसे अन्य देशों तथा पड़ौसी और बाहर के अधिराज्यों में रुचि उत्पन्न हो गई है। ऐसा होने पर हमारे अकेले की ओर से किये गये निर्णय को बिना संदेह के वे नहीं मानेंगे। यदि आप पुन: शान्ति स्थापित करना चाहते हैं, यदि आप अपने पड़ौसियों के साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं तो आपको उन्हें यह कहने के लिये व्यर्थ के अवसर नहीं देने चाहियें कि आप ऐसा

आकार प्रकार खड़ा करने जा रहे हैं और ऐसा काम कर रहे हैं जिनके द्वारा आपकी खुद की घोषणायें और यहां तक कि दूसरे के जो कुछ भी हित हो सकते हैं वे सब संकट में आ जाते हैं। यदि हमारे देश के उज्जवल नाम पर तथा उसके इस दावे पर कलंक लगने जा रहा है। कि वह सदैव जनता अथवा उन लोगों का समर्थक है जो शोषित है तो मैं समझता हूं कि यह मांग करना कुछ अधिक नहीं है कि इस विषय में सबके सब प्रतिनिधियों का निर्वाचन हो और इस सदन में उस राज्य के हितों के प्रति जिस समय हम संविधान के उस भाग पर पहुंचे उस समय वे जो कुछ भी कहें वह काश्मीर जनता का सच्चा प्रतिबिम्ब हो।

***अध्यक्षः** आपका संशोधन यह है कि नया निर्वाचन हो और सभा प्रतिनिधियों का निर्वाचन करे।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं केवल यही चाहता हूं कि उनका निर्वाचन हो।

***अध्यक्षः** आप यह भी कहते हैं कि सभा प्रतिनिधियों को भेजे। यदि ऐसा है तो साधारण निर्वाचन का प्रश्न कैसे उठता है?

***प्रो. के.टी. शाहः** मै कहता हूं कि सभा द्वारा उनका निर्वाचन हो।

***अध्यक्षः** यदि वह सभा का शेषांश हो तो क्या अन्तर है?

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं सुझाव रखता हूं कि वह अच्छा होगा यदि वयस्क मताधिकार द्वारा उनका निर्वाचन हो। पर यह हो नहीं सकता। यदि आप कश्मीर के लोकमत का सच्चा प्रतिबिम्ब प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको यह प्रजासभा द्वारा करना चाहिये जो राज्य का विधान मंडल है चाहे ऐसा करना हमारे लिये बहुत ही अप्रिय हो।

श्रीमान्, इस सम्बन्ध में सभा के समक्ष एक या दो बातें रखना अपना कर्त्तव्य समझता हूं। गत सप्ताह ही तो ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अपना निकट सम्पर्क बनाये रखने की सम्पुष्टि की है। यदि हम अब इस कार्य को पूर्ण कर लें तो ये दोनों घटनायें मिलकर अपना महत्त्व रखेंगी।

दूसरी बात यह है कि मैं यह चाहूंगा कि इस सदन के लोग इस बात को समझें कि काश्मीर की स्थिति जैसी कि है...।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या मैं माननीय संशोधन प्रस्तावक से यह जान सकता हूं कि सभा का निर्वाचन कब हुआ?

***प्रो. के.टी. शाहः** 1946 के नवम्बर या दिसम्बर में।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या काश्मीर में उस समय बर्फ गिरी?

***प्रो. के.टी. शाहः** यह मैं नहीं जानता। निर्वाचन सर्दियों में होते हैं।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** उस समय वर्तमान प्रधानमंत्री कारावास में थे।

***प्रो. के.टी. शाहः** उस समय के प्रधानमंत्री नहीं थे। वे कारावास में अवश्य थे।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** सभा के वर्तमान सदस्य कहां हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** यह मैं नहीं जानता। आप काश्मीर के डाकखाने से यह प्रश्न करें।

***श्री आर.के. सिधवाः** क्या माननीय सदस्य यह जानते हैं कि आया प्रजा-सभा अब भी है, यदि है तो कहां है उसकी सदस्य संख्या क्या है, उसके सदस्य कहां हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** प्रजा-सभा को अपने सदस्यों के पते मालूम होने चाहियें। सदस्य इकट्ठे हो सकते हैं या नहीं यह मैं नहीं जानता हूं। यदि आप प्रजा-सभा से परामर्श करना चाहते हैं और यदि आप काश्मीर की जनता का मत जानना चाहते हैं तो प्रजा-सभा की बैठक के लिये कम से कम गणपूर्ति हो सकती है। यदि आप नहीं चाहते हैं तो इस प्रस्ताव को पारित किया जा सकता है।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या माननीय सदस्य को यह विदित है कि प्रजा-सभा के कुछ अथवा अधिकांश सदस्य पाकिस्तान चले गये हैं और जो रह गये हैं वे पाकिस्तान के हित में कार्य कर रहे हैं? क्या वे इस बात से परिचित हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं इस बात से परिचित नहीं हूं। कुछ लोग चले गये होंगे।

***अध्यक्षः** यदि बाधा न दी जाये तो समय की बचत होगी।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैंने सोचा कि मुझे माननीय सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये, पर भविष्य में मैं उन पर ध्यान नहीं दूंगा।

सदन के समक्ष मैं दो या तीन बातें और रखना चाहूंगा। सर्वप्रथम मैं यह चाहूंगा कि सदन काश्मीर की जनसंख्या के अनुपात को याद रखे, उसकी भौगोलिक स्थिति, उसके सम्बन्ध तथा वहां जो कुछ हो सकता है उसकी सम्भावनाओं को याद रखे। मैं समझता हूं कि इस सदन को यह तो विदित ही है कि अब तक हमने लगभग 100 करोड़ काश्मीर पर खर्च कर दिया है। उसके प्रति फलस्वरूप हमें क्या मिल रहा है? न मालूम हमने काश्मीर पर कितनी जान न्योछावर कर दीं। पर हम अभी यहां तक भी नहीं पहुंच पाये हैं कि सामान्य दशा तथा पूर्ण शान्ति स्थापित हो पाई हो जिससे सामान्य संवैधानिक उन्नति हो सके।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरूः** माननीय सदस्य द्वारा कही गई बातों का मैं घोर विरोध करता हूं। यहां हम काश्मीर के भविष्य पर वाद-विवाद नहीं कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** हम केवल प्रस्ताव पर वाद-विवाद कर रहे हैं। जो विषय प्रस्ताव के अंतर्गत नहीं आते हैं उनके सम्बन्ध में बातें कहना माननीय सदस्य के लिये न्यायसंगत नहीं है।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि इन विषयों को मैं नहीं लूंगा। मैं उन पर टीका टिप्पणियां भी नहीं करूंगा। मैं केवल यह कहकर समाप्त करूंगा कि यह बड़ा गम्भीर विषय है। सदन को इस बात का ध्यान रखना चाहिये...।

***एक माननीय सदस्यः** गम्भीर से आपका क्या आशय है?

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं आपको नहीं बता सकता हूं कि गम्भीर से क्या आशय है और किस प्रकार वह गम्भीर है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): गम्भीर बात यह है कि माननीय सदस्य कश्मीर से इतने अनभिज्ञ हैं कि वे यह भी नहीं जानते हैं कि प्रजा-सभा के सदस्य कौन थे और कहां हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** इस सदन के लिये इस विषय के सब पहलुओं पर विचार करना और फिर उस पर निर्णय करना बड़े महत्त्व का विषय है। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** अब हम प्रस्ताव और संशोधनों पर विचार-विमर्श कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, इस सदन में इस बात पर दो राय नहीं हो सकती कि हम बहुत प्रसन्न हैं कि शीघ्र ही, हमारे प्रधानमंत्री के शब्दों में काश्मीर की सौन्दर्यपूर्ण भूमि के, जिसका सौन्दर्य इतनी लूट मार में भी बना हुआ है, प्रतिनिधि इस महान् सदन में अपने स्थान ग्रहण करेंगे। जिस विषय पर हम आज विचार-विमर्श कर रहे हैं उसको आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता है। मेरे मित्र प्रो. शाह ने सर्वप्रथम 'काश्मीर' के स्थान में 'जम्मू और काश्मीर' रखने का संशोधन प्रस्तुत किया। क्या मैं उनको यह बता दूं कि इस विषय के बारे में माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर ने जो कुछ कहा उसके बाद संशोधन केवल एक मसौदा सम्बन्धी संशोधन के रूप में रह जाता है। माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर ने हमें यह आश्वासन दिया कि यद्यपि केवल काश्मीर शब्द का ही प्रयोग किया गया है, पर आशय है समस्त राज्य से। यदि प्रो. शाह संविधान के प्रारूप की प्रथम अनुसूची के भाग 3 को देखने का कष्ट करेंगे तो उनको विदित होगा कि इस राज्य का उल्लेख केवल काश्मीर के रूप में किया गया है। इसके पश्चात् प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन के लिये न गुंजाइश है और न वह न्यायसंगत है।

माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर द्वारा पेश किये प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरे मन में कुछ बातें उत्पन्न होती हैं और मैं यह निवेदन करूंगा कि अपने उत्तर में वे कृपा कर इन बातों पर कुछ प्रकाश डालें। सर्वप्रथम हमें यह नहीं बताया गया या शायद मैंने सुना नहीं होगा कि प्रधान मंत्री की मंत्रणा से शासक द्वारा इस राज्य से कितने सदस्य या प्रतिनिधियों का नाम निर्देशन किया जायेगा।

***माननीय श्री एम. गोपालास्वामी आयंगरः** मैंने चार का उल्लेख किया था।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे दु:ख है कि मैंने यह नहीं सुना। सदस्यों की संख्या चार है। मैं आशा करता हूं कि गत जनगणना में जो जनसंख्या के अंक थे उनको हम मानेंगे। इस सम्बन्ध में यह बात पैदा होती है कि क्या केवल जम्मू और काश्मीर का ही नहीं वरन् लद्दाख का भी प्रतिनिधान होगा—मेरा आशय मीरपुर और पूंछ सहित समस्त राज्य क्षेत्र से है। माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर ने कहा है कि कुछ माह पूर्व तक काश्मीर की हालत कुछ अस्थिर सी थी पर अब वह स्थिर होती जा रही है। हमारे लिये यह बड़ा ही सुखद समाचार है और हम इसका बहुत स्वागत करते हैं। कृतज्ञता की यह बात है कि स्थिति तेजी के साथ सुधरती जा रही है। काश्मीर के कुछ क्षेत्रों के बारे में, जो पहले पाकिस्तान के अधिकार में था और जो गलत रूप से आजाद काश्मीर कहा जाता था, कुछ विरोधी अफवाहें उड़ी थीं तथा समाचारपत्रों में समाचार प्रकाशित हुए थे। यू.एन.सी.आई.पी. के संकल्प...।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** श्रीमान्, क्या इस तथ्य की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करूं कि इस प्रकार की बातें नियम विरुद्ध मानी जायें। हम काश्मीर के सम्पूर्ण रूप पर विचार-विमर्श नहीं कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** मैं उनका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करने ही वाला था कि इस प्रकार की टिप्पणियां पूर्णतया असंगत हैं। इस समय हम काश्मीर से इस सदन में चार प्रतिनिधि भेजने के विषय में बातचीत कर रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं आपके आदेश को शिरोधार्य करता हूं। मैं और आगे इस विषय को नहीं बढ़ाऊंगा। मैं अब आगे की बात को लूंगा और वह है इस सभा में काश्मीर से प्रतिनिधान की रचना। मैं कभी अपने जीवन में पृथक् निर्वाचन के पक्ष में नहीं रहा। कभी भी मैंने पृथक् निर्वाचनों का समर्थन नहीं किया जिनके आधार पर इस देश में और यहां तक कि इस सदन तक में निर्वाचन हुए। हम सबको यह बात भली भांति विदित है कि मंत्रिमंडल योजना के अन्तर्गत पृथक् निर्वाचन के आधार पर इस सदन के लिये सदस्यों का निर्वाचन हुआ था। उस समय मैंने यह आशा की थी कि इस स्थिति का शीघ्र ही अन्त होगा। कल ही तो हमने उस काम को पूरा किया है जिसको हमने किसी समय गत वर्ष में अथवा कुछ मास पूर्व आरम्भ किया था अर्थात् जिस काम को हमने अठारह या इक्कीस माह पूर्व शुरू किया था और जिसके द्वारा हमने पृथक् निर्वाचनों को समाप्त किया था।

***अध्यक्षः** इसमें पृथक् निर्वाचन का कोई प्रश्न नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं उस बात पर आ रहा हूं। इस बात को प्रो. शाह ने काश्मीर की जनसंख्या के बारे में उल्लेख किया था कि वहां कितने हिन्दू हैं कितने मुसलमान हैं, कितने सिख हैं। जुलाई सन् 1946 में प्रत्येक प्रान्त से इन्होंने सदस्य निर्वाचित किये थे। प्रतिनिधान का आधार प्रान्त अथवा राज्य की प्रत्येक दस लाख की जनसंख्या के पीछे एक सदस्य था। यानी मध्यप्रान्त और बरार जैसे प्रान्त के लिये जिसमें 160 लाख

गैर-मुस्लिम थे और 10 या 12 लाख मुसलमान थे इस सदन के लिये 16 गैर-मुस्लिम अथवा हिन्दू भेजे गये और एक मुसलमान। इस राज्य की जनसंख्या में, जिसका कि शीघ्र ही इस सदन में प्रतिनिधान होने वाला है, मैं समझता हूं कि लगभग 10 लाख हिन्दू हैं और शेष मुसलमान। उस निर्णय के अनुकूल जिसको हमने कल ही स्वीकार किया है, मैं प्रसन्न होउंगा यदि हम इस नये नाम-निर्देशन के लिये पृथक्करण की भावना को तिलांजलि दे दें। यदि समस्त जम्मू और कश्मीर से सारे के सारे प्रतिनिधि हिन्दू हों या मुसलमान हों बशर्ते कि आपको वही सर्वोत्तम व्यक्ति मिल जायें तो मैं इसका स्वागत करूंगा। मैं आशा करता हूं कि इस सदन में कश्मीर से इन प्रतिनिधियों के नाम-निर्देशन के विषय में साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधान नहीं किया जायेगा। पृथक् निर्वाचन के विषय पर इस सदन में जो निर्णय हम कर चुके हैं यह उस निर्णय के पूर्णतया अनुरूप होगा।

***अध्यक्ष:** क्या मैं यह संकेत करूं कि जहां तक राज्यों से इस सदन में प्रतिनिधान का सम्बन्ध है सम्प्रदाय के आधार पर प्रतिनिधि भेजने का कभी कोई प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ है जहां तक राज्यों का सम्बन्ध है प्रान्तों के सदस्यों की तरह से नहीं बल्कि वहां से सब सदस्य जो यहां आये हैं, जिस सम्प्रदाय के वे हैं उसके आधार पर वे यहां नहीं आये हैं। अत: यह प्रश्न यहां नहीं उठता है।

***श्री एच.वी. कामत:** चूंकि हमारा निर्वाचन मंत्रिमंडल योजना के अंतर्गत हुआ था, मैं आशा करता हूं कि राज्यों के प्रतिनिधान के लिये एक ही नीति अथवा रीति का पालन होगा और मैं यह भी आशा करता हूं कि कश्मीर राज्य के लिये उस रीति का परित्याग नहीं किया जायेगा जो राज्यों के लिये अपनाई गई है और प्रान्तों में नहीं अपनाई गई है।

इसके बाद श्रीमान्, एक बात और है जिसको, जब भी समय हो, मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से स्पष्ट कराना चाहूंगा। गत नवम्बर-दिसम्बर के इस सभा के सत्र में जबकि नियमों में संशोधन किया जा रहा था मैंने एक प्रश्न उठाया था कि उस सब राज्यों का जिनका अब तक प्रतिनिधान नहीं हुआ है इस सदन में उचित रूप से तथा उपयुक्त प्रकार से कब तक प्रतिनिधान हो जायेगा। मेरी समझ से विधान-सभा का यह अन्तिम सत्र है और इस कारण यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है—अत: हम वास्तव में बहुत ही प्रसन्न होते यदि मय राज्यों के जो भारत में प्रवेश कर चुके हैं या मिल चुके हैं समस्त भारत के प्रतिनिधि इस सभा में आ जाते।

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्, माननीय सदस्य फिर विषय से दूर हो रहे हैं और उनकी बातें इस प्रस्ताव से कोई सम्बन्ध नहीं रखती हैं।

***अध्यक्ष:** मेरा यह विचार हो रहा है कि अन्य राज्यों का उल्लेख अनावश्यक तथा असंगत है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैंने सोचा कि राज्य के रूप में काश्मीर जो भारतीय संघ में प्रवेश कर चुका है वह अन्य उन राज्यों के समान ही है जो भारतीय राज्य में प्रवेश कर चुके हैं और इस विचार से मैं यह...।

***अध्यक्ष:** जहां तक मुझे विदित है भोपाल और काश्मीर को छोड़कर अन्य सब राज्य जो प्रवेश कर चुके हैं वे तो इस सभा में आ गये हैं। जहां तक हैदराबाद का सम्बन्ध है मैं नहीं जानता हूं कि यह प्रवेश की किस स्थिति में है, पर और सब राज्य जिनके प्रवेश के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं है वे सब सिवाय काश्मीर और भोपाल के आ ही गये हैं और कश्मीर के लाने का आज कदम उठाया जा रहा है।

***श्री एच.वी. कामत:** तक हैदराबाद जहां का सम्बन्ध है...।

***अध्यक्ष:** यह प्रश्न अभी नहीं उठता है। वह आवश्यक नहीं है; मैं स्वयं बाद में इसकी सूचना दे दूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** गत बजट सम्बन्धी सत्र में गृह मंत्री सरदार पटेल ने कहा था कि हैदराबाद तथा काश्मीर की स्थिति अन्य राज्यों के समान है जो भारतीय संघ में प्रवेश कर चुके हैं। मैंने केवल यह आशा की थी कि—मैंने आग्रह नहीं किया था कि भारतीय संघ में प्रविष्ट हुए सब राज्यों के प्रतिनिधि इस सदन में होंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस सदन में प्रतिनिधि भेजने का विषय बहुत सरल है। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि यह फालतू विषय माननीय सदस्य द्वारा क्यों प्रस्तुत किया गया है।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** माननीय सदस्य असंगत प्रसंग पर बोलने में दक्ष हैं वे यह ठीक-ठीक नहीं समझ पाते हैं कि क्या-क्या हो चुका है? लगभग समस्त राज्य जो प्रवेश कर चुके हैं उनके प्रतिनिधि यहां हैं सिवाय काश्मीर के।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, आपने स्वयं यह कहा था कि भोपाल का प्रवेश हो गया है पर अब तक उसका प्रतिनिधान नहीं हुआ। मैं नहीं समझ पाता हूं कि मैं विषय से असंगत हूं या कोई और ही भूल रहा है। मेरे पास एक तालिकाबद्ध कथन है जिसमें इस समय इस सदन में उपस्थित सदस्यों की कुल संख्या दी गई है।

***अध्यक्ष:** बात क्या है?

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं केवल यह कहना चाहता था कि अभी इस सदन में इक्कीस सदस्यों को स्थान ग्रहण करना है और मैं आशा कारता हूं कि शीघ्र ही इस ओर कदम उठाया जायेगा कि ये सबके सब 21 सदस्य जम्मू और कश्मीर राज्य के सदस्यों के सहित इस महत्त्वपूर्ण सत्र के दौरान में इस सदन में अपने स्थान ग्रहण कर लेंगे। मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि क्या बाधाओं की कोई आवश्यकता थी। मैं विषय को आगे बढ़ाने नहीं जा रहा था और मुझे खेद है कि प्रधानमंत्री ने मेरे तर्कों की धारा को गलत समझा और मुझे बाधा देना ठीक समझा। श्रीमान् यह मेरी अन्तिम बात है और मैं भाषण समाप्त कर चुका। मैं नहीं समझता हूं कि प्रधानमंत्री क्यों इतने बेसब्र हो रहे हैं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** खिन्न हो रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अपना छोटा सा भाषण समाप्त करने के पूर्व मैं उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करूंगा। अन्तिम बात यह है (*बाधायें*)। मैं आशा करता हूं कि श्री बालकृष्ण शर्मा को अवसर मिलेगा।

***अध्यक्षः** बात क्या है?

***श्री एच.वी. कामतः** अन्तिम बात यह है। इस शहर के एक महत्त्वपूर्ण दैनिक पत्र की कल की प्रति में एक समाचार था कि काश्मीर के महाराज थोड़े समय के लिये अवकाश पर जा रहे हैं और कोई अन्य व्यक्ति रीजेंट के रूप में प्रकार्य करेगा। श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि इस संकल्प का संपालन, जिसको हम आज पारित कर रहे हैं, इस प्रकार की जनश्रुति पर आश्रित परिवर्तन के पूर्व हो जायेगा और अल्पावकाश पर राज्य छोड़ने के पूर्व कश्मीर के शासक द्वारा अपने प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर सदस्यों का नाम-निर्देशन कर दिया जायेगा।

अन्त में, मैं प्रसन्न होता कि जिस व्यक्ति का प्रधानमंत्री के रूप में उल्लेख किया गया है उसको किसी अन्य नाम से कहा जाता। भारत में केवल एक ही प्रधानमंत्री है। मुझसे यह कहा गया है कि सब प्रान्तों को अभी हाल में एक गश्ती चिट्ठी जारी की गई है—राज्यों के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानता हूं—कि वहां मुख्य मंत्रियों का नाम मुख्यमंत्री अथवा प्रमुख मंत्री रखा जाये और प्रधानमंत्री की उपाधि केवल भारतीय संघ के प्रधानमंत्री के लिये आरक्षित रखी जाये। अतः मुझे खुशी होती यदि इस प्रस्ताव के पेश करने वाले माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर 'प्रधानमंत्री' के स्थान में 'प्रमुख मंत्री' शब्द रखते क्योंकि मैं समझता हूं कि इससे भारतीय सरकार ने जो अभी-अभी सब प्रान्तों को गश्ती चिट्ठी जारी की है उसका विरोध होता है।

ये बातें हैं जिनको मैं आशा करता हूं कि इस प्रस्ताव के पेश करने वाले विचार-विमर्श के उत्तर में स्पष्ट करेंगे। मैं आशा करता हूं कि इस सदन में हम काश्मीर के अपने दोस्तों का शीघ्र ही स्वागत कर सकेंगे।

***मौलाना हसरत मोहानीः** श्रीमान्, श्री आयंगर के प्रस्ताव का मैं इस आधार पर विरोध नहीं कर रहा हूं कि इसके द्वारा यह चाहा गया है कि काश्मीर के प्रतिनिधियों का नाम-निर्देशन हो, न इस आधार पर कि मेरे कुछ माननीय मित्रों ने संशोधन प्रस्तुत किये हैं जिनमें से कुछ में यह चाहा गया है कि 50 प्रतिशत का निर्वाचन हो और 50 प्रतिशत का नाम-निर्देशन। चाहे शत प्रतिशत का निर्वाचन हो या नाम-निर्देशन मुझे चिन्ता नहीं। परन्तु जिसका मैं विरोध करता हूं वह बात यह है। वास्तव में मैं जानता तो नहीं हूं पर इस समय काश्मीर से इस संविधान-सभा में प्रतिनिधि भेजे जाने की मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता हूं। पंडित नेहरू नाराज हो गये क्योंकि वे कहते हैं कि प्रवेश पूर्ण रूप से हो चुका है और प्रवेश में कोई सन्देह नहीं रहा। वे कहते हैं कि काश्मीर भारत में प्रवेश कर चुका है और उसको इस संविधान-सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिये मांग करने का पूरा अधिकार है। यद्यपि इस विषय पर मुझे अपने मित्र श्री आयंगर से झगड़ने की आवश्यकता नहीं है पर मुझे उनसे एक प्रश्न पूछना है। मैं प्रधानमंत्री के इस विचार को मान लेता हूं कि प्रवेश पूर्ण रूप से हो चुका है, यद्यपि मुझे इस बात में सन्देह है कि

[मौलाना हसरत मोहानी]

वे पूर्णतया ठीक कहते हैं या नहीं। क्योंकि एक बार नहीं, तो दो बार नहीं वरन् अनेकों बार वे यह कह चुके हैं कि यह प्रवेश काश्मीर के लोगों के जनमत के अन्तिम निर्णय पर आश्रित है। बेशक, अब उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया है। उन्होंने एक कठिनाई पैदा कर दी है और उनकी चाल यह है कि यह जनमत कभी नहीं होगा और इसलिये वे कहते हैं कि प्रवेश पूर्ण रूप में हो चुका है और उसके प्रति कोई सन्देह नहीं है। यह मानते हुए भी मैं श्री गोपालास्वामी आयंगर से यह पूछता हूं कि वे भारतीय सरकार के निर्णय की प्रत्याशा क्यों करते हैं और इस बात का प्रस्ताव इस समय प्रस्तुत क्यों करते हैं। मैं यह कहता हूं कि इस समय क्यों। क्योंकि सामान्यतया हम देखते हैं कि उन सब राज्यों में जो भारत में प्रवेश कर चुके हैं स्थायी रूप से उन राज्यों के शासकों को निवृत्ति वेतन देकर अलग कर दिया है और प्रशासन कार्य भारतीय सरकार अथवा किसी प्रान्तीय सरकार ने ले लिया है। काश्मीर सरकार की क्या स्थिति होगी। इस विषय में मैं नहीं जानता हूं कि भारतीय सरकार अथवा प्रधानमंत्री के मन में क्या है। प्रवेश के पश्चात् क्या उनको (काश्मीर के शासक को) भी निवृत्ति वेतन देकर अलग कर दिया जायेगा और प्रशासन कार्य भारतीय सरकार के हाथों में ले लिया जायेगा? क्या ऐसी बात है? तब तो मैं यह कहूंगा कि इस बात पर अभी कोई निर्णय नहीं हुआ है और जब निर्णय नहीं हुआ है तो मैं समझता हूं कि वर्तमान समय में काश्मीर के महाराजा की कोई सत्ता नहीं है अतः संविधान-सभा के लिये उनके द्वारा प्रतिनिधियों के नाम-निर्देशन का प्रश्न ही नहीं उठता है। मैं कहता हूं कि ये सब बातें समय से पूर्व हैं। जब तक आप काश्मीर सरकार की स्थिति और महाराज की स्थिति के बारे में निर्णय न कर लें तब तक इस प्रकार के किसी प्रस्ताव को रखना निन्दनीय रूप से मूर्खतापूर्ण है। इस आधार पर मैं इस प्रस्ताव का पूर्णतया विरोध करता हूं। मैं समझता हूं कि इस समय उनको यह प्रस्ताव पेश नहीं करने देना चाहिये।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरूः** श्रीमान्, मेरे माननीय साथी के इस अति सरल प्रस्ताव के कारण कुछ सदस्य लगभग उन समस्त सम्बन्धित विषयों का उल्लेख करने के लिये प्रेरित हुए हैं जो इस प्रस्ताव के विषय में नहीं हैं वरन् काश्मीर के विषय में हैं और इस प्रकार हम काश्मीर की इस महान् जटिल तथा कठिन समस्या पर सोचने के लिये प्रेरित हो गये हैं। इस प्रसंग में यह जरा कठिन सा हो जाता है कि कोई व्यक्ति अपने आपको सदन के समक्ष रखे हुए इस सरल प्रस्ताव पर ही सीमित रखे। फिर भी मैं इस प्रस्थापना से परे नहीं जाना चाहता हूं और न मैं यह समझता हूं कि यह सदन उससे परे जायेगा यद्यपि बहुत से सदस्यों को ऐसा करने का प्रलोभन हुआ है।

सदन के समक्ष बड़ी सरल प्रस्थापना है। इस समय मैं यह कह दूं कि प्रो. शाह के पांडित्य और ज्ञान का मैं बड़ा प्रशंसक हूं। फिर भी आज जो कुछ उन्होंने काश्मीर के बारे में कहा केवल उसे ही सुनकर नहीं वरन् अनेक वर्षों तक काश्मीर के बारे में जो कुछ उन्होंने ही किया तथा कहा उसको समझकर मुझे आश्चर्य हुआ है। मेरा भी काश्मीर से अनेकों रूप में सम्बन्ध रहा है और एक प्रकार से तो मैं भारत के किसी अन्य भाग की अपेक्षाकृत काश्मीर का ही अधिकतर हूं। काश्मीर में स्वतंत्रता के युद्ध से

मैं सम्बन्धित रहा हूं और वहां के अनेकों समूह, बहुत से लोगों, महाराजा से लेकर तुच्छ से तुच्छ व्यक्तियों तक अनेक व्यक्तियों से परिचित हूं अत: यदि सदन में मैं कुछ कहने का साहस करूं तो प्रो. शाह इस विषय पर जितना अधिकार रख सकते हैं उससे अधिक अधिकारपूर्वक मैं कह सकता हूं। प्रधानमंत्री होने के नाते से नहीं वरन् एक काश्मीरी होने के नाते से तथा एक भारतीय होने के नाते से, जो इन विषयों से सम्बन्धित रहा है, मैं बोल रहा हूं। प्रो. शाह द्वारा यह प्रस्ताव सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि काश्मीर की तत्कथित प्रजा-सभा इस सदन में प्रतिनिधि भेजे। यदि प्रो. शाह काश्मीर की बाबत कुछ जानते हैं तो उनको यह जानना चाहिये कि काश्मीर में प्रजा-सभा से अधिक अस्तित्वहीन संस्था और कोई नहीं है। उनको यह जानना चाहिये कि सारी की सारी परिस्थितियां, जिनके अन्तर्गत गत निर्वाचन हुआ था, आश्चर्यजनक तथा तमाशे के समान थीं। उनको यह जानना चाहिये कि काश्मीर के समस्त शिष्टजनों द्वारा उसका बहिष्कार किया गया था। निर्वाचन भयंकर शीतकाल में किया गया था जिससे कि लोग निर्वाचन स्थलों में न जा सकें, और काश्मीर की सर्दी ऐसी है जिसका शायद इस सदन के सदस्यों को कोई अनुभव नहीं। एक माननीय सदस्य ने वहां की सर्दी के बाबत मुझसे पूछा था और यह पूछा था कि क्या बर्फ गिर रही थी। पर ठंडे देश में जब बर्फ गिरती है तो उस समय गरम मौसम कहा जाता है। सर्दियों में बर्फ गिरने वाले मौसम के तापक्रम से 20° या 30° अंक तापक्रम गिर जाता है। निर्वाचन उस समय किये गये थे जब सड़कें बन्द थीं जब दर्रों में हो कर निकल नहीं सकते थे। वास्तव में मतदाताओं के लिये बाहर निकलना असम्भव था। इसके अलावा इन कठिनाइयों के होते हुए भी जिनमें एक कठिनाई यह भी थी कि उनके (काश्मीर की राष्ट्रीय संस्था) नेता, जिनमें शेख अब्दुल्ला तथा अन्य लोग थे, जेल में थे—इन सब बातों के होते हुए भी जब काश्मीर के राष्ट्रीय सम्मेलन ने इन चुनावों को लड़ना निश्चित किया तो उनके उम्मीदवारों को बन्दी बनाया गया और सब तरह के रोड़े अटकाये गये; और यह स्पष्ट था कि उनको खड़े नहीं होने दिया गया। अत: उन्होंने उसका बहिष्कार करने का निश्चय किया और उन्होंने बहिष्कार किया जिसका फल यह हुआ कि काश्मीर के सम्पूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन ने उन निर्वाचनों का बहिष्कार किया जिस प्रकार से 1920 के राष्ट्रीय आन्दोलन में भारत में निर्वाचनों का बहिष्कार किया गया था और इस बहिष्कार में आश्चर्यजनक सफलता मिली। यह सत्य है कि लोग चुनाव में आये। बहिष्कार करने से आप और लोगों को चुनाव से नहीं रोक सकते, पर मतदाताओं का प्रतिशत इतना कम था, मैं उस सही भिन्न को तो भूल गया, पर वह लगभग उपेक्षणीय सा था और जो लोग चुनाव में आये वे ऐसे थे जिन्होंने सदा स्वतंत्रता के आंदोलन का विरोध किया था और उस समय तक जिन्होंने काश्मीर की स्वतंत्रता के विचार को जहां तक उनसे हो सका धक्का पहुंचाया था। और इसके बाद जब काश्मीर ने इन नई स्थितियों को ग्रहण किया और सदैव की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र हो गया तो उनमें से कुछ लोगों ने पाकिस्तान की शरण ली। इस प्रकार के निकाय का उल्लेख किया गया है, वह एक अस्तित्वहीन निकाय है, वास्तव में तो वह कोई निकाय ही नहीं। वह शरीर से पृथक् हुई आत्मा है। उसकी बैठक नहीं होती। पर फिर भी प्रो. शाह शान्तिपूर्वक यह कहते हैं कि इस आदरणीय सदन के लिये वह प्रजा-सभा सदस्यों का निर्वाचन कर सकती है—यह तो एक बड़ा भयानक प्रस्ताव है।

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

मैं यह मानता हूं कि इस सदन के सदस्य के लिये यह वांछनीय नहीं है कि वह नाम-निर्देशन द्वारा अथवा किसी अन्य संकीर्ण रीति से आये, पर दुर्भाग्यवश हममें से यहां बहुत से ठीक उसी रूप से यहां नहीं आये हुए है जिस रूप में हम उनको यहां चाहते थे, मेरा आशय राज्यों से आने वालों से है। उनमें से कुछ नाम-निर्देशन द्वारा भेजे गये हैं और कुछ निर्वाचन द्वारा आये हैं—और निवार्चन भी उन निकायों द्वारा जिनका बहुध ा ठीक-ठीक निर्माण नहीं हुआ था। पर वस्तुस्थिति जैसी थी वैसी हमें स्वीकार करनी पड़ी क्योंकि हम यह चाहते थे कि वे यहां आकर संविधान निर्माण में हमारी सहायता करें। अत: कश्मीर के लिये जो रीति सुझाई गई है वह यद्यपि आदर्श तो नहीं है पर फिर भी मैं यह अवश्य सोचता हूं कि भारत के अनेकों राज्यों में ग्रहण की गई रीति से वह अच्छी है। यह वह रीति है जिसमें लोकप्रिय सरकार लोकप्रिय पक्ष के नेता के द्वारा जो उसका मुखिया है शासक से कहलाती है कि अमुक-अमुक नाम होने चाहियें और इस प्रकार आपको सदस्य मिलते हैं। प्रजातंत्र के विचार से भी यह कोई गलत रीति नहीं है। यद्यपि यह शत प्रतिशत ठीक नहीं है पर सदन को यह गौर करना चाहिये कि आप कौन सा इससे अच्छा तरीका सुझा सकते हैं। मौलाना हसरत मोहानी की बात मैं समझ सकता हूं और यदि मैंने उनको ठीक-ठीक सुना है तो मैं उनसे सहमत होने के लिये तैयार हूं कि हमारे लिये यह अधिक अच्छा और शानदार होता कि काश्मीर प्रतिनिधि यों को हम यहां बहुत पहले ले आते पर हमने यह नहीं किया। यह हमारा कसूर था, शायद औरों का कसूर हो, पर कारण चाहे जो कुछ ही हमने वह नहीं किया। परन्तु क्या यह कोई कारण है कि हम आगे इस त्रुटि को क्यों बनाये रखें? आगामी दो या तीन माह के लिये अथवा जितने भी अधिक समय के लिये यह सदन समवेत हो, जबकि हम अपने संविधान को अन्तिम स्वरूप दे रहे हैं हमारे लिये यह वांछनीय है कि काश्मीर राज्य तथा किसी अन्य राज्य के प्रतिनिधियों को यहां आने और भाग लेने का पूर्ण अवसर दें चाहे अब तक उन्होंने कोई भाग न लिया हो। अत: मैं निवेदन करता हूं कि श्री आयंगर द्वारा पेश किया गया प्रस्ताव ही इस कठिनाई से निकलने का मार्ग है।

मैं उनको यह सुझाव दूंगा तथा उनसे निवदेन करूंगा कि वे इस प्रस्ताव की शब्दावली में थोड़ा सा परिवर्तन स्वीकार कर लें। जो कुछ शब्द उन्होंने रखे हैं वे ठीक हैं, उन्होंने 'काश्मीर शब्द रखा है जैसा कि अनेक अधिनियमों में वह आता है। सामान्तया उन्होंने इन अधिनियमों में से ही शब्द को लिया है। पर क्योंकि लोगों के मन में कुछ थोड़ा सा भ्रम है यह अच्छा होगा कि इसकी कुछ अधिक पूर्णरूप में जैसे कि ''काश्मीर राज्य'' के रूप में व्याख्या कर दी जाये और उसके पश्चात् कोष्टकों में ''जो काश्मीर और जम्मू के राज्य के नाम से प्रसिद्ध है'' शब्द रख दिये जायें। नि:संदेह जहां तक इस बात का स्मबन्ध है कि जम्मू और काश्मीर से लोगों को आने का अधिकार हो मैं समझता हूं कि ऐसा करने के लिये उनको हर तरह का मौका देना तो हमारे हाथ में है। और दूसरी बात यह है कि जहां तक रीति का सम्बन्ध है जो इस प्रस्ताव में प्रस्तावित है उसके अतिरिक्त अन्य किसी उत्तम तथा अधिक उपयुक्त रीति मैं नहीं सोच सकता हूं।

***श्री टी.ए. रामालिंगम् चेट्टियर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अब इस प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि इस प्रस्ताव पर मत लिया जाये।''

मैं यह मान लेता हूं कि सदन की यही इच्छा है।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** श्रीमान्, वास्तव में मुझे बहुत कम कहना है। पर मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र मौलाना हसरत मोहानी ने जो एक दो बातें कही हैं उनके प्रति कुछ शब्द कहने ही चाहियें। उन्होंने सन्देह प्रकट किया है कि इस प्रवेश को पूर्ण होने के पक्ष में क्या प्रधानमंत्री की व्याख्या पूर्णतया सही है। मेरी धारणा है कि वह पूर्णतया सही है। महाराजा ने प्रवेश करने की इच्छा प्रकट की थी और तत्कालीन गवर्नर-जनरल द्वारा उसे स्वीकार कर लिया गया था। उस अभिलेख की मेरे सामने एक प्रति है। वह पूर्णतया बिना किसी शर्त के है। पर उस समय से जो कुछ हुआ उसका उल्लेख मेरे माननीय मित्र ने किया है और मैं जानता हूं कि मेरे एक दूसरे माननीय मित्र प्रो. शाह भी मौलाना साहब के विचारों की ओर संकेत करते हुए प्रतीत हुए। सही स्थिति यह है। प्रवेश पूर्णरूप से हो चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि हमने उस समय जनमत लेने की बात रखी है जबकि एक ठीक, उपयुक्त और निष्पक्ष जनमत लेने के लिये परिस्थितियां उत्पन्न हो जायें। पर वह जनमत केवल इसलिये है कि राज्य के लोगों को यह अवसर दिया जाये कि वे अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति कर सकें और उनकी इच्छा की अभिव्यक्ति केवल इस दिशा में ही होगी कि जो प्रवेश हो चुका है क्या वे इसकी सम्पुष्टि करते हैं या नहीं, पर यह सम्पुष्टि इस रूप में नहीं है कि प्रवेश को पूर्ण करने के लिये इस सम्पुष्टि की आवश्यकता हो, वरन् यदि जनमत का निर्णय काश्मीर राज्य को भारत में बने रहने के विरुद्ध होता है तो हम केवल इस बात के लिये वचनबद्ध हैं कि काश्मीर को भारत से पृथक् करने में हम रुकावट नहीं डालेंगे। इस सम्बन्ध में मैं सदन का ध्यान भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के उन उपबंधों की ओर आकृष्ट करूंगा जिनके अन्तर्गत कोई राज्य भारत में प्रविष्ट हो जाता है और बाद में प्रवेश अधिनियम से बाहर होना चाहता है और इस प्रकार मुख्य अधिराज्य से पृथक होना चाहता है तो अधिराज्य की स्वीकृति के बिना वह ऐसा नहीं कर सकता है। हमने केवल यह वचन दिया है कि जब कभी जनमत लिया जाता है और यदि जनमत का निर्णय भारत के विरुद्ध होता है तो यदि वे हमसे अलग होना चाहते हैं तो कश्मीर के लोगों की इस इच्छापूर्त्ति में हम रुकावट नहीं डालेंगे। उसका केवल यही अर्थ है। अत: मेरी धारणा है कि यह कथन कि इस समय प्रवेश पूर्णरूप से हो चुका है राज्य की वर्तमान स्थिति का पूर्णरूप से सही चित्रण है।

इसके बाद उन्होंने पूछा कि इस समय प्रतिनिधि क्यों लाये जायें। प्रवेश कार्य की पुष्टि कराने के लिये हम उन्हें इस सदन में नहीं ला रहे हैं। क्योंकि वे प्रवेश कर चुके हैं इस तथ्य के आधार पर उनको जो अधिकार मिले हैं उनको प्रयोग में लाने के लिये हम उनको अवसर दे रहे हैं। हम एक नया संविधान बना रहे हैं जिसका केवल संघ

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

पर ही प्रभाव नहीं पड़ेगा वरन् संघ के एककों पर भी प्रभाव पड़ेगा और प्रवेश हो जाने के कारण काश्मीर इस समय उस संघ का एकक है। समस्त संघ के लिये संविधान बनाने के लिये यही ठीक है कि इस सभा में सब एककों के प्रतिनिधियों को स्थान मिले।

मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह की आपत्तियों का लम्बा उत्तर देना आवश्यक नहीं है। उनको माननीय प्रधानमंत्री द्वारा निपटाया जा चुका है। मैं केवल यही कहूंगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि देर हुई। प्रो. शाह यह विचार रखते हुए प्रतीत हुए कि कुछ माह पूर्व युद्ध बन्द कर दिया गया था और वे यह नहीं समझ सके कि उसके बाद ही यह कदम क्यों नहीं उठाया गया। युद्ध बंद करने से केवल सैनिक कार्यवाही स्थगित की जाती है और वातावरण के इतना शांत होने में कि हम कुछ कर सकें कुछ समय लगता है। मैं यह विश्वास करता हूं कि मेरा यह कहना ठीक है कि युद्ध बंद करने के पश्चात् और वातावरण शांत होना आरम्भ होने के पश्चात् संविधान निर्मातृ के रूप में संविधान-सभा की यही पहली बैठक है। मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रस्तावना को इस बैठक में प्रस्तुत करने में हम पर देरी करने का अपराध लगाया जा सकता है।

मैं नहीं समझता हूं कि उनके भाषण की अन्य बातों का मैं उत्तर दूं पर एक संशोधन जिसकी उन्होंने सूचना दी है और जिस पर उन्होंने आग्रह किया है उसको मुझे लेना चाहिये। वे पैरा क में से 'all' शब्द को निकालना चाहते हैं। 'all' शब्द जानबूझ कर रखा गया था क्योंकि वर्तमान नियमों में कुछ स्थानों का नाम-निर्देशन बिना किसी अन्य व्यक्ति की सहायता के शासक द्वारा किये जाने के उपबंध हैं। अब हम जो सुझाव रख रहे हैं वे ये हैं कि कुछ स्थानों का ही नहीं बल्कि सब स्थानों का नाम-निर्देशन शासक द्वारा होना चाहिये और ऐसा करने में वे प्रधानमंत्री की मंत्रणा का पालन करेंगे। केवल यही कारण है कि 'all' शब्द को वहां रखा गया है। मैं समझता हूं कि इस शब्द के रहने देने में कोई हानि नहीं है।

'काश्मीर' शब्द के सम्बन्ध में जो उन्होंने दूसरा संशोधन रखा है उसके बारे में प्रधान मंत्री सुझाव दे ही चुके हैं कि शायद हम उसे स्पष्ट कर सकें। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस प्रकार के प्रभाव का संशोधन रखने के लिये इच्छुक हूं कि ''Kashmir State'' के पश्चात् ''otherwise known as the State of Jammu and Kashmir'' शब्द कोष्टकों में रख दिये जायेंगे। यदि सभा को यह मान्य है तो संशोधित रूप में मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया जाये।

केवल एक विषय और है जिसका मुझे उल्लेख करना है और वह है मेरे माननीय मित्र श्री कामत द्वारा उठाया गया विषय। इस सम्बन्ध में ''Prime Minister'' शब्द के प्रयोग से वे कदाचित् घबराये हुए से प्रतीत हुए। वे ''Premier'' शब्द को इसके स्थान में रखना चाहेंगे। दुर्भाग्य से मैं उनके सुझाव को यहां मानने में असमर्थ हूं क्योंकि राज्य की संवैधानिक विधि के द्वारा कश्मीर में मंत्रिमंडल का मुखिया ''Prime Minister' के नाम से विदित है और जब तक यह वहां है तब तक हमें इस पदावली का जो काश्मीर संविधान में प्रयुक्त है सम्मान करना चाहिये।

मुझे और भी बातों का उल्लेख करना चाहिये—अर्थात् जनता द्वारा निर्वाचन जिसका सुझाव मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह ने दिया है। काश्मीर की वर्तमान दशा में जनता द्वारा प्रत्यक्ष साधारण निर्वाचन सम्भव नहीं है। यदि उनका सुझाव यह होता है कि सीमित मताधिकार के आधार पर, जो पहले प्रवर्तन में था, हम इस दिशा में कुछ कर सकते थे तो उसका अर्थ भी एक प्रजा-सभा संगठित करने के प्रयोजन हेतु साधारण निर्वाचन ही होता और आज ऐसे निर्वाचन नहीं हो सकते हैं। अतः मेरा विचार यह है कि कश्मीर के आधुनिक वातावरण में इन लोक-प्रतिनिधियों के लिये प्रत्यक्ष निर्वाचन नहीं किया जा सकता और इन निर्वाचनों के लिये आपको नई प्रजा-सभा बनानी होगी। इन परिस्थितियों में उत्तम मार्ग यही है। जिसको मैंने सुझाया है।

मैं आशा करता हूं कि यह सदन इस प्रस्ताव को स्वीकार करेगा।

***अध्यक्षः** जो सुझाव माननीय प्रधानमंत्री ने प्रस्तुत किया था उसे प्रस्तावक महोदय ने स्वीकार कर लिया है और वह सुझाव यह है कि ''State of Kashmir'' शब्दों के पश्चात् कोष्टकों में 'otherwise known as the State of Jammu and Kashmir' शब्द मूल प्रस्तावना में प्रविष्ट किये जायें। यदि सभा इसे स्वीकार कर लेती है तो उसके बाद मैं और संशोधनों को लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि प्रस्तावित पैरा 4-क में 'State of Kashmir' शब्दों के पश्चात् कोष्टकों में 'otherwise known as the State of Jammu and Kashmir' शब्द प्रविष्ट किये जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

> ''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में से 'all' शब्द को निकाल दिया जाये।''
>
> ''कि प्रस्तावित कंडिका-4 में जहां-जहां ''Kashmir' शब्द आया है उसके पूर्व 'Jammu and' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।'
>
> ''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'by nomination' शब्दों के स्थान में ''by election by the Praja Sabha of the State of Jammu and Kashmir' शब्दों को रखा जायें''
>
> ''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'nominated' शब्दों के स्थान में 'elected' शब्द रखा जाये।''
>
> ''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'by the Ruler of Kashmir on the advice of Prime Minister' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकार किये गये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संविधान-सभा के नियमों की अनुसूची में कंडिका 4 के पश्चात् निम्न कंडिका प्रविष्ट की जाये:

'4-A. Notwithstanding, anything contained in paragraph 4, all the seats in the Assembly allotted to the State of Kashmir (otherwise known as the State of Jammu and Kashmir) may be filled by nomination and the representatives of the State to be chosen to fill such seats may be nominated by the Ruler of Kashmir on the advice of his Prime Minister.' ''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संविधान का प्रारूप—*जारी*

अनुच्छेद 104

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं निवेदन करूंगा कि अनुच्छेद 104 स्थगित किया जाये।

अनुच्छेद 105

***अध्यक्ष:** इसके बाद मैं अनुच्छेद 105 को लूंगा।

(संशोधन संख्या 1879 और 1880 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 105 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 105 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 106

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 106।

(संशोधन संख्या 1881 और 1882 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन है। चूंकि वह संशोधन पेश नहीं किया गया। अत: यह संशोधन भी रह जाता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): वह संशोधन संख्या 1883 में आ जाता है जिस पर मैं अपना संशोधन पेश करूंगा।

***अध्यक्षः** यदि ऐसा है तो अच्छा है।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, क्या आपकी अनुज्ञा से श्री नजीरुद्दीन अहमद के स्थान में मैं इस संशोधन को पेश कर सकता हूं।

***अध्यक्षः** जी हां।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 106 के खंड (1) में जहां कि 'High Court' शब्द दूसरी बार आता है उसके पश्चात् 'duly qualified for appointment as a judge of the Supreme Court' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

यदि किसी समय सत्र समवेत करने के लिये उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की गणपूर्ति नहीं होती है तो मुख्य न्यायाधिपति तत्सम्बन्धी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करेगा और भारत का मुख्य न्यायाधिपति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का नाम-निर्देशन करना जितने समय के लिये आवश्यक समझे उतने समय के लिये तदर्थ न्यायाधीश के रूप में उच्च न्यायालय की बैठकों में उपस्थित होने के लिये उससे निवेदन करेगा। कोई तर्क आवश्यक नहीं है। जो न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में तदर्थ न्यायाधीश के रूप में बैठेगा उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश के रूप में नियुक्त होने के लिये पर्याप्त योग्यता होनी चाहिये, अन्यथा वह स्थान ग्रहण नहीं कर सकता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, आपकी आज्ञा से मैं सूची 6 के संशोधन संख्या 124 को पेश करूंगा। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1883 के उल्लेख सहित अनुच्छेद 106 के खंड (1) में 'Chief Justice may' शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

इस संशोधन की शब्दावली बहुत ही सरल है क्योंकि सदन को यह विदित होगा कि अनुच्छेद 106 मुख्य न्यायाधिपति द्वारा तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये व्यवस्था करता है और वह यह है कि किसी भी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से यह निवेदन किया जा सकता है कि वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से सहयोग करें और किसी विशिष्ट अभियोग का निर्णय करने के लिये मुख्य न्यायधिपति द्वारा निश्चित किये गये धर्मासन पर बैठे। जिस रूप में यह अनुच्छेद वर्तमान है उसका आशय यह है कि मुख्य न्यायाधिपति तत्कालीन सरकार के बिना किसी हवाले के ऐसा कर सकता है। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि स्थिति ठीक वैसी नहीं है जैसी कि होनी चाहिये क्योंकि मुख्य न्यायाधिपति सहित उच्चतम न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा की जाती है तो इस न्यायालय में बिना कार्यपालिका के हवाले के और अतिरिक्त नियुक्ति नहीं होनी चाहिये। यह ठीक है कि मुख्य न्यायाधिपति द्वारा किसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से इस प्रकार सहयोग देने की प्रार्थना करने से प्रशासी तथा आर्थिक समस्यायें उत्पन्न होंगी ही तथा ऐसे अवसर के औचित्य की भी यह मांग है कि कार्यपालिका के मुखिया के परामर्श

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के बिना मुख्य न्यायाधिपति यह कार्य न करे। इसीलिये श्रीमान्, मैंने यह पेश किया है कि 'with the consent of the President' शब्द रख दिये जायें। वास्तव में उसकी सम्मति प्राप्त करना कोई बड़ा कठिन कार्य नहीं है क्योंकि अधिकतर वह रस्मी विषय है। और फिर एक रक्षा कवच यह भी है कि ऐसे अवसर आते हैं जबकि उच्चतम न्यायालय ने उन विषयों का निर्णय किया है जिसमें राजनैतिक गंध आती है। इस रक्षा कवच के कारण ऐसी किसी राजनैतिक ईर्ष्या की सम्भावना का भी अंशत: निराकरण हो सकता है जिसका प्रयोग मुख्य न्यायाधिपति द्वारा किसी विशिष्ट अभियोग के निर्णय के लिये तदर्थ न्यायाधीश पसन्द करने में हो जाये। अमरीका में न्यायपालिका का इतिहास लगभग एक यही इतिहास है कि न्यायपालिका की मनोवृत्ति पर राजनीति का किस प्रकार प्रभाव पड़ा है। अमरीका संविधान का कोई भी विद्यार्थी यह जानता होगा कि अमरीका के उच्चतम न्यायालय द्वारा संवैधानिक विषयों के निर्णय में राजनीति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। नि:संदेह एक ऐसे रक्षा कवच की आवश्यकता है जिसके द्वारा यह व्यवस्था की जाये कि ऐसे विषय में कार्यपालिका का कुछ हाथ होगा और यदि वह वास्तव में यह समझे कि किसी विशिष्ट न्यायाधीश का चुनाव ठीक नहीं है तो यह हो सकता है कि मुख्य न्यायाधिपति का ध्यान उस विषय के उस विशिष्ट पहलू की ओर आकृष्ट किया जाये।

जैसी विशेष दशा का मैंने उल्लेख किया है केवल उसके रक्षार्थ ही व्यवस्था करने के हेतु नहीं वरन् ऐसे विषय में निहित औचित्य की सम्पुष्टि के लिये भी मैंने इस संशोधन को पेश किया है। मैं आशा करता हूं कि संशोधन के स्वीकार करने में सदन को कोई कठिनाई नहीं होगी। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं दो संशोधनों को स्वीकार करता हूं सूची 6 का संख्या 124 और संशोधन संख्या 1883।

***अध्यक्ष:** दो संशोधन पेश किये गये हैं। दोनों को डा. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। अब मैं उन पर मत लूंगा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1883 के उल्लेख सहित अनुच्छेद 106 के खंड (1) में 'Chief Justice may' शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President and, शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 106 के खंड (1) में जहां कि 'High Court' शब्द दूसरी बार आता है उसके पश्चात् 'duly qualified for appointment as a judge of the Supreme Court' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 106 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 106 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 107

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1884। यह निषेधात्मक संशोधन है। अत: मैं इसे नियम विरुद्ध ठहराता हूं।

संशोधन संख्या 1885। इस प्रश्न पर निर्णय हो चुका है। अत: इसे पेश करने को आवश्यकता नहीं है।

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं संशोधन संख्या 1886 को पेश नहीं कर रहा हूं क्योंकि इसी प्रकार का एक और संशोधन है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1887 न्यूनाधिक रूप में शाब्दिक संशोधन है। अत: उसके पेश करने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश कर सकता हूं:

''कि अनुच्छेद 107 में से 'subject to the provisions of this article' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

ये शब्द बिल्कुल अनावश्यक हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 107 की पंक्ति 3 में 'at any time' शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, इस संशोधन का आशय वही है जो कि उस संशोधन का था जिसको मैंने पूर्ववर्ती अनुच्छेद पर पेश किया था और जिसको इस सदन ने स्वीकार कर लिया था। यह अनुच्छेद निवृत्ति प्राप्त न्यायाधीशों की उच्च न्यायालय में उपस्थिति के सम्बन्ध में है। जो तर्क मैंने पहले दिये थे उनके आधार पर यह आवश्यक होगा कि किसी ऐसे व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिये आमंत्रित करने के पूर्व मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति प्राप्त कर ले।

(संशोधन संख्या 1889 और 1890 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** अब हमारे समक्ष अनुच्छेद और संशोधन वाद-विवाद के लिये प्रस्तुत हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश किये गये संशोधन 125 को मैं स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 107 को पंक्ति 3 में 'at any time' शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 107 में से 'subject to the provisions of this article' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 107 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 107 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 108

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 108 सदन के विचारार्थ प्रस्तुत है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 108 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'108. The Supreme Court shall sit at such place or places as the Chief Justice may, with the approval of the President, from time to time appoint.' ''

जिस रूप में यह अनुच्छेद वर्तमान है, मेरी तुच्छ राय में उसकी शब्दावली सुन्दर नहीं है। जिस समय से हमने इस संविधान के एक-एक अनुच्छेद पर विचार करना आरम्भ किया है उस समय से यह पहला अवसर है कि हमारे सामने एक ऐसा अनुच्छेद आया है जिसमें यह दिया गया है कि राज्य का एक विशिष्ट विभाग एक विशिष्ट स्थान पर समवेत होगा। हम संसद के सदनों के अधिवेशन के स्थान नियत करने वाले अनुच्छेद 69 जैसे तथा राष्ट्रपति का पदावास नियत करने वाले अनुच्छेद 48 (4) जैसे महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद पारित कर चुके हैं। मुझे विश्वास है कि ऐसे स्थान से सम्बन्ध रखने वाले और भी अनुच्छेद हैं जहां अनुमानत: राज्य के निकाय अथवा विभाग समवेत होंगे। पर किसी

भी अनुच्छेद में उस विशिष्ट स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है जहां राज्य के ऐसे विभाग समवेत हों। क्या मैं डा. अम्बेडकर से यह निवेदन कर सकता हूं कि इस अनुच्छेद में यह उल्लेख करना कि उच्चतम न्यायालय दिल्ली में समवेत हो, वे क्यों आवश्यक समझते हैं? भारत की राजधानी के प्रश्न पर पूरा का पूरा संविधान मौन है। हमारे देश की राजधानी का कोई जिक्र संविधान में नहीं है। इस सदन में एक संशोधन भी आया था जिसको किसी कारणवश पेश नहीं किया गया, पर मुझे यह बताया गया है कि मेरे मित्रगण इस विषय के पीछे दूसरे रूप से पड़े हुए हैं। भारत की राजधानी बदलने की आवश्यकता अथवा वांछनीयता का बहुधा उल्लेख किया गया है। खैर, इस बात का विरोध किये बिना तथा इस ओर जो प्रयत्न किया जायेगा उसके होते हुये भी यहां मैं इस प्रश्न पर केवल औचित्य के आधार पर विचार प्रस्तुत करता हूं। जबकि इस प्रश्न पर समस्त संविधान मौन है तो इस अनुच्छेद में देहली के जिक्र को राजधानी के रूप में क्यों लायें? क्या यह अधिक वांछनीय अथवा सुखद नहीं है कि उच्चतम न्यायालय के लिये स्थान पसन्द करने के कार्य को हम मुख्य न्यायाधिपति तथा भारतीय संघ के राष्ट्रपति पर छोड़ दें? वास्तव में इस विषय पर निर्णय करने के लिए वे सबसे अधिक कुशल व्यक्ति हैं और मुझे विश्वास है कि ऐसे संविधान के अन्तर्गत, जिसने कि हम भारतीय संघ के लिये राष्ट्रपति निर्वाचन कर रहे हैं और मुख्य न्यायाधिपति के लिये एक महान् वैध तथा कानूनी प्राधिकार रख रहे हैं, मैं ऐसा कोई कारण नहीं देख पाता हूं कि हम यह बात क्यों रखें कि उच्चतम न्यायालय एक विशिष्ट स्थान पर समवेत हो। इस आशय के लिये इस अनुच्छेद में दिल्ली के उल्लेख करने के लिये कोई भी मान्य कारण नहीं है। यह हो सकता है कि उच्चतम न्यायालय अन्य स्थान में भी समवेत हो सके; दिल्ली राजधानी होने पर भी अन्य अनेकों कारणों से वे यह निश्चित करें कि वह अन्य स्थान में समवेत हो। इसलिये मैं सोचता हूं कि इस अनुच्छेद में दिल्ली का जिक्र अनावश्यक है।

एक और बात है श्रीमान्, जिस रूप में अनुच्छेद है वह इस प्रकार पढ़ा जाता है ''The Supreme Court shall be a court of record'' उच्चतम न्यायालय क्या होगी और क्या नहीं होगी ये ऐसे विषय हैं जिन पर पूर्ववर्ती और परवर्ती अनुच्छेदों में पूर्णरूप से विचार कर लिया गया है। 'court of record' यह उधार लिया हुआ पद है और हमें यहां इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। अतः मेरे संशोधन में यह दिया गया है कि उच्चतम न्यायालय उस स्थान अथवा उन स्थानों में समवेत होगी जिनको समय-समय पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से मुख्य न्यायाधिपति नियत करे। श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं और सदन की स्वीकृति के लिये निवेदन करता हूं।

***अध्यक्षः** सूची संख्या 1 में इस अनुच्छेद पर एक संशोधन संख्या 3 है जिसकी सूचना श्री गैडगिल ने दी है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1891 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 108 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

'108.–The Supreme Court shall be a court of record and shall have all the powers of such a court including the power to punish for contempt of itself.

108.-A–The Supreme Court shall sit in Delhi or at such other place or places as the Chief Justice of India may, with the approval of the President, from time to time appoint.' ''

श्रीमान्, साधारण वाद-विवाद के पश्चात् मैं यह बताऊंगा कि जिन संशोधन को मैं पेश कर रहा हूं वह क्यों आवश्यक हैं।

(संशोधन संख्या 1892, 1893 और 1894 पेश नहीं किये गये।)

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि सूची 6 के संशोधन संख्या 126 के, जिसे डा. अम्बेडकर ने अभी पेश किया, प्रस्तावित अनुच्छेद 108-क में 'shall sit in Delhi or at such other place or places' शब्दों के स्थान में 'shall sit at Delhi and or at such other place and places' शब्द रखे जायें।''

यदि किसी प्रकार यह संशोधन सदन को स्वीकार न हो तो मैं इसके स्थान में एक और पेश करूंगा-

''कि सूची 6 के संशोधन संख्या 126 के प्रस्तावित अनुच्छेद 108-क में 'places' शब्द के पश्चात् 'or in Delhi and at such other place or places' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

यदि मेरा प्रथम संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा।

''The Supreme Court shall sit in Delhi and or at such other place or places, as the Chief Justice of India may, with the approval of the President, from time to time appoint.''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या माननीय सदस्य कृपा कर यह स्पष्ट करेंगे कि 'and' के पश्चात् आड़ी रेखा होनी चाहिये या पड़ी।

***श्री जसपतराय कपूर:** दोनों के बीच में एक रेखा होनी चाहिये। यदि मेरा दूसरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है, तो अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''The Supreme Court shall sit in Delhi or at such other Place or Places as the Chief Justice of India, with the approval of the President, from time to time appoint.''

श्रीमान्, इस संशोधन को पेश करने के पक्ष में मेरा तर्क यह है कि मुझे विश्वास है कि जिस अर्थ के प्रतिपादन के लिये अनुच्छेद 108-क है, वह अर्थ इस अनुच्छेद से प्रतिपादित नहीं होता है और यदि होता है तो मैं समझता हूं कि यह स्पष्ट है कि इसके द्वारा एक विसंगत स्थिति उत्पन्न हो जाती है और दिल्ली राजधानी के साथ बड़ा ही दुर्व्यवहार किया जाता है। जिस रूप में प्रस्तावित अनुच्छेद है, उसका यह आशय है कि उच्चतम न्यायालय दिल्ली में अथवा उसके विकल्प में किसी अन्य स्थान में समवेत होगा, जिसका वास्तव में यही अर्थ होता है कि उस समय वह दिल्ली में समवेत नहीं होगा। इसका यह और भी अर्थ होता है कि चाहे उच्चतम न्यायलय देश के आधे दर्जन स्थानों में समवेत हो, पर उनमें से एक स्थान दिल्ली नहीं होगा। अत: उच्चतम न्यायालय के समवेत होने के लिये दिल्ली और अन्य स्थान परस्पर अपवर्जित होंगे। मुझे विश्वास है कि न माननीय डा. अम्बेडकर का यह इरादा है और न श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का ही, जो इस संशोधन के सहायक लेखक प्रतीत होते हैं कि इस अनुच्छेद का यह अर्थ लगाया जाये। और फिर, श्रीमान्, उस विसंगति के विषय में, जो इससे उत्पन्न होती है मुझे यह निवेदन करना है कि उसका आशय यह है कि जब तक उच्चतम न्यायालय दिल्ली में समवेत होता है उसे देश में अन्यत्र गश्ती (circuit) न्यायालय का अधिवेशन करने का अधिकार अथवा विशेषाधिकार नहीं होगा। अपने कार्य के हित के या अभियोगों में लगे हुये लोगों को आवश्यक सुविधा प्रदान करने के लिये देश के विभिन्न भागों में गश्ती (सरकिट) न्यायालय का अधिवेशन करने की आवश्यकता को मुख्य न्यायाधिपति समझ सकता है। यदि मुख्य न्यायाधिपति यह समझता है कि इस तथ्य के कारण कि बहुत से अभियोग मान लीजिये मद्रास से अथवा बम्बई से इकट्ठे हो गये और उन अभियोगों को संव्यवहृत करने के लिये अथवा वादी-प्रतिवादी तथा अन्य व्यक्तियों को सुविधा देने के लिये, जिससे कि दिल्ली तक आने की असुविधा से वे बच जायें, यह आवश्यक है कि गश्ती न्यायालय मद्रास या बम्बई में जायें, तो मुख्य न्यायाधिपति को ऐसा करने का अधिकार नहीं है। हां, यदि वे ऐसा करना चाहते हैं तो एक छोटी सी तरकीब काम में ला सकते हैं, परन्तु वह बहुत ही असुविधाजनक तथा हास्यास्पद होगी। उच्चतम न्यायालय को वह किसी अन्य स्थान में, मान लीजिये शाहदरा अथवा किसी अन्य नये शरणार्थियों के नगर में, जिसमें मुख्य न्यायाधिपति को स्थान देने के लिये माननीय मंत्री पुनर्निवास राजी हो जायें, ले जा सकते हैं और किसी निकटस्थ स्थान में उच्चतम न्यायालय को ले जाकर वे जैसी आवश्यकता पड़े उसके अनुसार बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में गश्ती न्यायालय का अधिवेशन कर सकते हैं। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि इस विषम स्थिति को नहीं रहने देना चाहिये। दिल्ली के प्रति अन्याय के सम्बन्ध में मैं निवेदन करता हूं कि वर्तमान अनुच्छेद में यह निहित है कि चाहे उच्चतम न्यायालय छ: स्थानों में अधिवेशन करे, पर उसको यह अधिकार नहीं होगा कि अभागी दिल्ली में वह गश्ती न्यायालय भी रख सके। इसका अर्थ यह है कि या तो दिल्ली को यह विशेषाधिकार होगा कि वह अपने क्षेत्र के अन्तर्गत ही उच्चतम न्यायालय का अधिवेशन करे या उसको यह सुविधा तक नहीं होगी कि वह गश्ती न्यायालय अपने यहां रख सके। दिल्ली को जो कुछ दृष्टिगोचर होता है या तो वह उस सबकी साम्राज्ञी है और या उसको विस्मृति में पटक दिया जायेगा। श्रीमान्, मैं न तो इसके प्रति किसी तर्क को ही समझ पाता हूं और न इस स्थिति की मूर्खता को ही समझ पाता हूं। यदि इस अनुच्छेद के द्वारा किसी का यह विचार है कि उच्चतम न्यायालय के स्थान को दिल्ली से हटाकर किसी अन्य स्थान पर ले जाया जाये,

[श्री जसपतराय कपूर]

तो मैं निवेदन करता हूं कि यह प्रस्थापना सीधे स्पष्ट रूप में कही जानी चाहिये और उसे इस अप्रकट रीति से नहीं आने देना चाहिये। पर मुझे विश्वास है कि इस संशोधन के लेखकों की यह मंशा कदाचित् नहीं है, अतः इस विषय की विस्तृत व्याख्या मुझे नहीं करनी चाहिये; और चूंकि शायद लेखकों की यह मंशा नहीं है, मैं यह निवेदन करूंगा कि यह आवश्यक है कि इस संशोधन का उस रूप में संशोधन किया जाये जो मैंने सुझाया है, जिससे कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को यह अधिकार हो कि वह दिल्ली में या किसी अन्य स्थान या स्थानों में, दोनों दिल्ली और किसी अन्य स्थान या स्थानों में अधिवेशन करने के लिये प्रबंध कर सके। श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि यह आवश्यक संशोधन माननीय डा. अम्बेडकर को तथा इस सदन को भी मान्य होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर जिन्होंने डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत किये गये संशोधन पर संशोधन पेश किया है, उनका विरोध करने में वकील न होने के कारण मुझे हिचकिचाहट है। परन्तु श्रीमान्, मैं समझता हूं कि मैं इस विदेशी भाषा को उतना समझता हूं, जितना कि एक विदेशी समझ सकता है और जैसा सरल खंड 108 अब है, उसे उतना जटिल और कठिन बनाने की आवश्यकता को समझने में असमर्थ हूं, जितना कि श्री जसपतराय के संशोधन को स्वीकार कर लेने पर वह बन जायेगा।

श्रीमान्, भविष्य में उच्चतम न्यायालय के कार्य करने के स्थान के सम्बन्ध में कुछ ढील देने की आवश्यकता से मैं पूरी तौर से सहमत हूं, यह हो सकता है कि वह दिल्ली अथवा किसी अन्य स्थान में कार्य करे और यही मेरे मित्र श्री जसपतराय कपूर चाहते हैं। यदि दिल्ली में न्यायालय नियत किया जाता है, तो यह भी संभव होना चाहिये कि मुख्य न्यायाधिपति, यदि आवश्यक हो तो और यदि वह यह आवश्यक समझता है कि न्यायालय के मुख्यावास के परिवर्तन करने पर दिल्ली में न्यायालय उसी प्रकार अधिवेशन कर सकता है, जिस प्रकार कि वह दिल्ली के मुख्यावास रखकर अन्यत्र अधिवेशन कर सकता है, तो उसका अधिवेशन अन्यत्र करने का प्रबंध कर सके मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 108-क का जो वर्तमान स्वरूप है, उसके अन्त के शब्दों की स्थिति में यह बात आ जाती है। वह इस प्रकार है—''उच्चतम न्यायालय दिल्ली और अन्य किसी स्थान या स्थानों में समवेत होगा''। इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि उच्चतम न्यायायल या तो दिल्ली में या अन्य किसी स्थान में समवेत हो। इसमें उच्चतम न्यायालय के दिल्ली में और अन्य किसी स्थान में समवेत होने की संभावना का बहिष्कार नहीं किया जाता है और जहां तक पद रचना का सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता हूं कि उसमें कोई अधिक विधि सम्बन्धी पारिभाषिक बात हो, पर है वह वास्तव में भाषा का विषय और मैं समझता हूं कि जो डर मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर ने प्रकट किया है, वह पूर्णतया निराधार है और वे सब बातें, जिनको वे उस परिस्थिति को अनुकूल बनाने के लिये लाना चाहते हैं, जो अनुच्छेद 108-क की रचना से उत्पन्न होगी, जिस रूप में यह खंड इस समय है, उसमें हैं। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि 'और' तथा 'अथवा'' रखने में कोई सार नहीं है। किसी संविदा-प्रपत्र से अथवा किसी वहन-पत्र से अथवा किसी ऐसे लेख से जिसमें

वाणिज्य सम्बन्धी लेन देन हों, मैं बहुत परिचित हूं, जिसमें किसी विकल्प की संभावना की व्यवस्था करना बहुत आवश्यक होता है, परन्तु इसको कोई विधि सम्बन्धी मंजूरी प्राप्त नहीं है और मैं समझता हूं कि हम 'और' तथा 'अथवा' नहीं रख सकते हैं और एक-दूसरे के विकल्प के रूप में हम 'और' तथा 'अथवा' के बीच में कोई आड़ी रेखा नहीं डाल सकते हैं और न हम दोनों 'और' तथा 'अथवा' को साथ-साथ रख सकते हैं, क्योंकि भाषा दोषपूर्ण हो जायेगी। मैं समझता हूं कि सदन को इस बात का पूर्ण विश्वास रखना चाहिये कि इस संशोधन के बनाने वालों के विचार में वे परिस्थितियां थी जो श्री जसपतराय कपूर के दिमाग में आई हैं और उनको यह विश्वास हो गया और जो लोग उन्हें विश्वास दिला सकते हैं, उन्होंने विश्वास दिलाया है कि अनुच्छेद 108-क जिस रूप में है, उसमें सब परिस्थितियां आ जाती हैं। जिस प्रकार श्री जसपतराय कपूर ने संशोधन प्रस्तुत किया है, यदि वह स्वीकार कर लिया जाता है तो कठिनाई होगी। श्रीमान्, डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैंने श्री जसपतराय कपूर के तर्क को सुना है तथा श्री कृष्णमाचारी के तर्क को भी सुना है। मेरी सम्मति यह है कि शब्दावलि जिस रूप में है उस रूप में वह वास्तव में अस्पष्ट है, स्पष्ट नहीं है। निश्चय ही कोई भी व्यक्ति यह तर्क उठा सकता है कि 'other' शब्द दोनों 'place' और 'places' शब्दों को विशिष्टता प्रदान करता है। जिस रूप में यह संशोधन है उसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि या तो न्यायालय दिल्ली में होगा और दिल्ली के अतिरिक्त यदि वह किसी अन्य स्थान में होता है तो दिल्ली में कोई गश्ती न्यायालय नहीं हो सकता है। यदि 'other' शब्द 'places' को विशिष्टता प्रदान करता है तो न्यायालय दिल्ली के अतिरिक्त अन्य स्थान में हो सकता है। मैंने समझा था कि श्री कृष्णमाचारी इस अस्पष्टता को दूर करेंगे, पर उनका भाषण सुनने के बाद मेरी सम्मति यह है कि यह संशोधन वास्तव में द्वयर्थक है। मैं नहीं समझता हूं कि इस संशोधन के लेखकों का यह भाव व्यक्त करने का आशय था कि दिल्ली एक ऐसा स्थान होगा, जो श्री जसपतराय कपूर के शब्दों में या तो सर्वोच्चाधिकार स्थान है या एक परित्यक्त स्थान है। जिस रूप में आज मैं स्थिति को समझ रहा हूं, उसके अनुसार मेरा विनम्र निवेदन यह है कि सरकार ने दिल्ली छोड़ने का निश्चय नहीं किया है। दिल्ली राजधानी है और आज हमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि दिल्ली वह स्थान होगा जहां उच्चतम न्यायालय होगा। मैं ऐसे किसी अन्य देश को नहीं जानता हूं जिसमें राजधानी के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान में उच्चतम न्यायालय होती हो। जब तक दिल्ली राजधानी है, उच्चतम न्यायालय के योग्य स्थान वही है। साथ ही साथ वह अभिलेख न्यायालय है; वह एक ऐसा न्यायालय है जिसके लिये अपना स्थायी स्थान होना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता है, परन्तु यदि किसी समय राजधानी बदली जाती है तो संविधान के इस भाग में संशोधन करने में कोई कठिनाई नहीं होगी अथवा यदि आज ही इसकी व्यवस्था करनी है, तो यदि आप इस संशोधन के साथ-साथ श्री जसपतराय कपूर के दूसरे संशोधन को स्वीकार कर लें तो उसकी और भी अधिक अच्छे रूप में व्यवस्था हो सकती है, क्योंकि फिर प्राधिकारियों को इस बात पर विचार करने का अधिकार होगा कि राजधानी बदल चुकी है और उसके बदलने पर यदि

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

ऐसा आवश्यक हो तो दिल्ली गश्ती न्यायालय से वंचित नहीं की गई है। मैं तो कम से कम यह नहीं समझ सका हूं कि एक ही समय में उच्चतम न्यायालय दिल्ली तथा किसी अन्य स्थान में किस प्रकार बैठेगा। मेरी तुच्छ सम्मति में एक न्यायालय उसी स्थान पर समवेत हुआ कहा जा सकता है जहां उसका स्थायी स्थान है। यह सोचना तर्कसंगत नहीं है कि यदि उच्चतम न्यायालय का अन्य स्थान पर गश्ती न्यायालय के रूप में बैंच बैठता है तो यह कहा जाये कि वह न्यायालय केवल उसी स्थान पर बैठ रहा हो। एक न्यायालय के लिये स्थायी स्थान होना चाहिये और उसका उस स्थान पर समवेत हुआ समझना चाहिये, जहां उसका स्थान स्थायी है। इस संदिग्धता का निवारण करना आवश्यक है। यदि श्री कृष्णमाचारी यह समझते हैं कि 'और' तथा 'अथवा' शब्दों का प्रयोग केवल हस्तान्तर पत्र अथवा संविदा में ही किया जाता है और उन्होंने उनको संधि अथवा विधि सम्बन्धी लेख में नहीं देखा है, तो श्री जसपतराय कपूर का संशोधन बिल्कुल स्पष्ट है और उस संशोधन को स्वीकार कर लेना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, श्री कामत तथा श्री जसपतराय कपूर दोनों ने जो बातें उठाई हैं, वे सब लगभग उस संशोधन में आ जाती हैं, जिसको मैंने पेश किया है।

श्रीमान्, नया अनुच्छेद 108 आवश्यक है, क्योंकि उच्चतम न्यायालय की सत्ता की व्याख्या करने के लिये हमने संविधान के मसौदे में कोई उपबंध नहीं रखा है। यदि सदन अनुच्छेद 192 को देखें, तो उसे भारत के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में ठीक ऐसा ही अनुच्छेद दिखाई पड़ेगा, अत: उच्चतम न्यायालय की स्थिति की व्याख्या करने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि संविधान में एक वैसा ही अनुच्छेद रखा जाये। इस बात के बताने में कि 'अभिलेख-न्यायालय' शब्दों का क्या अर्थ है, मैं सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं। संक्षेप में मैं यह कहूंगा कि अभिलेख न्यायालय वह न्यायालय है जिसके अभिलेखों को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है और जब कभी उनको किसी न्यायालय में पेश किया जाता है, तो उन पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। 'अभिलेख-न्यायालय' शब्दों का यह अर्थ है। इसके पश्चात् अनुच्छेद 108 के दूसरे भाग में यह कहा गया है कि अपने स्वयं का अवमान करने पर इस न्यायालय को दंड देने की शक्ति होगी। यह सत्य है कि यदि विधि द्वारा आप एक बार किसी न्यायालय को अभिलेख-न्यायालय बना दें, तो इस स्थिति के कारण अवमान के लिये दंड देने की शक्ति आवश्यक रूप से उसे हो जाती है। पर इस तथ्य के कारण कि इंग्लैंड में यह शक्ति अधिकतर साधारण विधि से प्राप्त की जाती है और चूंकि हमारे देश में साधारण विधि नाम की कोई वस्तु नहीं है, हमने यह उत्तम समझा कि सम्पूर्ण स्थिति का वर्णन स्वयं विधि में कर दिया जाये। इसी कारण अनुच्छेद 108 पुर:स्थापित किया गया है।

अनुच्छेद 108-क के सम्बन्ध में श्री कामत ने एक प्रश्न उठाया था कि 'दिल्ली' शब्द क्यों रखा जाये। इसका उत्तर बड़ा सरल है। किसी न्यायालय के लिये एक निश्चित स्थान होना चाहिये, जहां वह समवेत हो और अभियोगों से सम्बन्धित लोगों को यह विदित होना चाहिये कि वे कहां और किसके पास जायें। अत: स्वयं विधि में यह देना आवश्यक है कि न्यायालय कहां बैठे और इसीलिये 'दिल्ली' शब्द आवश्यक है और इसी आशय

के लिये इस शब्द को यहां पुर:स्थापित किया है। जो और शब्द अनुच्छेद 108-क में आये हैं, उनको इस कारण रखा गया है कि अभी तक यह निश्चय नहीं किया गया है कि दिल्ली भारत की राजधानी रहेगी। यदि आप ''or at such other place or places as the Chief Justice of India may, with the approval of the President from time to time appoint'' शब्द नहीं रखते हैं तो यह होगा। मान लीजिये भारत की राजधानी बदल दी जाती है तो हमें उच्चतम न्यायालय के उस स्थान में समवेत के लिये, जिसको संसद राजधानी के रूप में निश्चित करती है, संविधान में संशोधन करना पड़ेगा। इस कारण मैं समझता हूं कि ये शब्द आवश्यक हैं। मेरे माननीय मित्र श्री कपूर ने जो प्रश्न उठाया है, उसके सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी का उत्तर पर्याप्त है और मैं उससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं? जिस विचार को अभी डाक्टर अम्बेडकर ने प्रकट किया है कि अभियोगों से सम्बन्धित व्यक्तियों को यह विदित हो जाना चाहिये कि उच्चतम न्यायालय किस स्थान पर समवेत होगा और यह कि राजधानी के प्रश्न पर अभी कुछ तय नहीं किया गया है, तथा न्यायालय को किसी अन्य स्थान अथवा स्थानों में समवेत होना पड़े, तो फिर दिल्ली का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता है?

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि वक्ता द्वारा अपने प्रथम भाषण में यह प्रश्न पूछा गया था और उसका उत्तर दिया जा चुका है। उन्हें उस उत्तर से संतोष हुआ या नहीं, यह दूसरी बात है। पर प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका है।

***श्री जसपतराय कपूर:** क्या डाक्टर अम्बेडकर से मैं एक छोटी सी बात स्पष्ट करा सकता हूं? जब तक उच्चतम न्यायालय दिल्ली में समवेत होगा, उस समय क्या उसको यह अधिकार होगा कि वह इस देश में कहीं अन्यत्र गश्ती न्यायालय स्थापित कर सके?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अवश्य, एक गश्ती न्यायालय केवल एक धर्मासन है।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं सदन से अपना संशोधन वापस करने के लिये निवेदन करता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन 126।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि चूंकि यह संशोधन दो अनुच्छेदों से सम्बन्ध रखता है, यह अच्छा होगा कि उन पर पृथक्-पृथक् मत लिया जाये?

***अध्यक्ष:** अच्छा, मैं संशोधन संख्या 126 के प्रथम भाग पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 108 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'108. The Supreme Court shall be a Court of Record and shall have all the powers of such a court including the power to punish for contempt of itself.' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** मैं दूसरे भाग पर मत ले रहा हूं:

प्रस्ताव यह है:

''108-A. The Supreme Court shall sit in Delhi or at such other place or places, as the Chief Justice of India may, with the approval of the President, from time to time appoint.''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इसमें श्री कामत का संशोधन आ जाता है, उस पर मत लेने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है, इसमें पूरी की पूरी कार्यवाही आ जाती है।

***अध्यक्ष:** अत: डा. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में इस अनुच्छेद पर मैं मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 108 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 108 और 108-क संविधान में प्रविष्ट किये गये।

अनुच्छेद 109 से 114

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 109 इस संविधान का अंग बने।''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 109 से 114 तक स्थगित रखे जायें। मैं क्यों इन अनुच्छेदों को स्थगित रखना चाहता हूं, इसका कारण यह है कि ये अनुच्छेद यद्यपि साधारण नियमों का वर्णन करते हैं, पर इसके साथ-साथ अनुसूची 1 के भाग 3 में दिये हुए राज्यों के लिए कुछ रक्षण भी देते हैं। यह विदित हुआ है कि भाग 3 के राज्यों की स्थिति के बारे में पुन: विचार किया जा रहा है और भाग 3 के राज्यों को भाग 1 के राज्यों के समान आधार और स्तर पर लाया जायेगा। यदि ऐसा हो जायेगा तो इन 109 से 114 अनुच्छेदों में जो रक्षण दिये गये हैं, उनको पुर:स्थापन करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। मैं सुझाव रखता हूं कि इन अनुच्छेदों को स्थगित रखा जाये।

***अध्यक्ष:** अभी हम उनको छोड़ देंगे।

अनुच्छेद 115

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 115 संविधान का अंग बने।''

पहला संशोधन श्री कामत का संशोधन संख्या 1937 है। वह निषेधात्मक है और संशोधन के रूप में नियम-विरुद्ध घोषित किया जाता है। संशोधन संख्या 1938। डा. बख्शी टेकचन्द, आपने इस संशोधन पर संशोधन की सूचना दी है। सर्वप्रथम आप अपना संशोधन पेश करें।

***डा. बख्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं जिस संशोधन को पेश कर रहा हूं, वह संशोधनों की सूची अंक 1 में संशोधन संख्या 1938 पर संशोधन है। संशोधन संख्या 1938 पर संशोधन के अनुसार...''

***अध्यक्ष:** पहले आप मूल संशोधन पेश करिये और फिर उस संशोधन पर संशोधन पेश करें।

***डा. बख्शी टेकचन्द:** बहुत अच्छा, श्रीमान्, सबसे पहले संशोधन संख्या 1938 जिस रूप में छपा हुआ है उस रूप में पेश करूंगा।

''कि अनुच्छेद 115 में 'in the nature of' शब्दों के पूर्व 'including those' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

इस संशोधन में एक शाब्दिक परिवर्तन सुझाया गया है और वह यह है:

''कि अनुच्छेद 115 में 'or orders in the nature of the writs' शब्दों के स्थान में 'orders or writs including writs in the nature of' शब्द रखे जायें।''

[डा. बख्शी टेकचन्द]

इस संशोधन से अनुच्छेद 115 की पदावली अनुच्छेद 25 के अनुरूप हो जायेगी, जिसको यह सदन विगत सत्र में पारित कर ही चुका है। प्रारूप-समिति द्वारा प्रारूपित किया गया अनुच्छेद 115 इस प्रकार पढ़ा जाता है:

> "Parliament may by law, confer on the Supreme Court power to issue directions or orders in the nature of the writs of *habeas corpus, mandamus* prohibition, *quo warranto,* and *certiorari,* or any of them for any purpose other then those mentioned in clause (2) of article 25 (which relates to the enforcement of fundamental rights) of this Constitution.''

यह देखा गया होगा कि जिस रूप में यह अनुच्छेद प्रारूपित किया गया है, उससे केवल उस प्रकार के लेख, जो विशिष्ट रूप से उल्लिखित हैं, अन्य प्रकार के नहीं, निकालने की शक्ति उच्चतम न्यायालय में निहित करने की संसद की शक्ति सीमित होती है। इस संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद को और भी अधिक व्यापक बनाने का प्रयास किया जाता है, जिससे कि संसद उच्चतम न्यायालय को लेख, निदेश, आदेश अथवा उन लेखों को जो प्रारूपित अनुच्छेद 115 में हैं, निकालने की शक्ति देने के लिए विधि बना सके। भविष्य में उच्चतम न्यायालय को इस अनुच्छेद में दिये हुए लेखों के अतिरिक्त अन्य लेख निकालने की शक्ति देना आवश्यक हो सकता है। सदन इस बात में सहमत होगा कि संसद की शक्ति में ऐसे निर्बन्धन रखना वांछनीय नहीं है। और फिर जैसा कि मैं कह चुका हूं, अनुच्छेद 25 जो उच्चतम न्यायालय के न्याय मूलाधिकारों के संबंध में लेख निकालने की शक्ति के सबंध में है, उसमें इस पदावली को अंगीकार किया गया है। अनुच्छेद 25 का खंड (2) जिस रूप में इस सदन द्वारा पारित किया गया है, वह इस प्रकार है:

> ''The Supreme Court shall have power to issue directions or orders or writs including writs in the nature of *habeas corpus, mandamus,* prohibition, *quo warranto* and *certiorari,* whichever may be appropriate for the enforcement of any of the rights conferred by this part.''

अनुच्छेद 115 की पदावली को अनुच्छेद 25 की पदावली के अनुरूप बनाने के लिए मैं इस अनुच्छेद को पेश करता हूं और इस सदन की स्वीकृति के लिये इसे प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1939 जो डा. अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 115 में से '(which relates to the enforcement of fundamental rights)' शब्द और कोष्टक निकाल दिये जायें।''
>
> ये शब्द व्यर्थ हैं।

***अध्यक्ष:** संख्या 1940 वैसा ही है, जैसा कि अभी पेश हो चुका है, अत: उसको पेश करने की आवश्यकता नहीं है। संशोधन संख्या 1941, जो श्री नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है, वह भी प्रारूप संबंधी है और उसे पेश करने की आवश्यकता नहीं है। संशोधन संख्या 1942 पेश नहीं किया गया।

मैं समझता हूं कि हमारे पास ये ही संशोधन हैं।

क्या कोई सदस्य कुछ बोलना चाहता है?

अब हम संशोधनों पर मत लेंगे।

सर्वप्रथम मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 1939 को लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 115 में से '(which relates to the enforcement of fundamental rights)' शब्द और कोष्टक निकाल दिये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1938 पर अर्थात् डा. बख्शी टेकचन्द के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 115 में 'or orders in the nature of the writs' शब्दों के स्थान में 'orders or writs, including writs in the nature' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** यह अब मूल संशोधन हो जाता है। संशोधित रूप में इस संशोधन पर मैं सदन का मत लेता हूं।

संशोधित रूप में संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं दोनों संशोधनों द्वारा, एक डाक्टर अम्बेडकर का और दूसरा डाक्टर टेकचन्द का, संशोधित रूप में अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 115 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 115 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 116

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 116 को लेते हैं। पहला संशोधन श्री कामत के नाम से संशोधन संख्या 1943 है। निषेधात्मक होने के कारण इसको नियम विरुद्ध ठहराया जाता है।

केवल विराम चिन्ह से संबंधित होने के कारण संशोधन संख्या 1944 तो मसौदा संबंधी भी नहीं है।

अनुच्छेद 116 पर और कोई संशोधन नहीं है। मैं इस अनुच्छेद पर सदन का मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 116 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 116 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 117

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 117 पर आते हैं।

(संशोधन संख्या 1945 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 117 में 'all courts' शब्दों के स्थान में 'all other courts' शब्द रखे जायें।''

यदि यह संशोधन स्वीकार किया जाता है तो यह अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा।

''The law declared by the Supreme Court shall be binding on all other courts within the territory of India.''

मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि यह अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को स्वयं अपने ही निर्णय द्वारा बांधने का प्रयास नहीं करता है। मुझे विश्वास है कि इस अनुच्छेद से यह आशय है कि इस देश में उच्चतम न्यायालय के अधीन अन्य न्यायालय समय-समय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित निर्णय और विधि के बंधन में रहेंगे। स्वयं उच्चतम न्यायालय को इस बंधन में बांधना मूर्खता होगी क्योंकि लचीलेपन के प्रति विश्वास प्राप्त करने के लिए, भूल-चूक का निवारण करने के लिए और उन्नति के लिये गुंजाइश छोड़ने के लिये उच्चतम न्यायालय को इस अनुच्छेद के क्षेत्र से बाहर रखना होगा। उच्चतम न्यायालय ने किसी पूर्व अवसर पर जो निर्णय दिया है तथा विधि की जो व्याख्या की है उनमें वह संशोधन कर सकती है और पहले जो त्रुटियां की हैं उन्हें सुधार सकती है। अत: मैं समझता हूं कि यह कहकर इस अनुच्छेद का अर्थ सही-सही प्रकट किया जायेगा कि भारत राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत ''अन्य समस्त न्यायालयों'' में उच्चतम न्यायालय की विधि मानी जायेगी।

श्रीमान्, मैं इस संशोधन को पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 1947 और 1948 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, एक बात है जिसे मैं बता देना चाहूंगा। वास्तव में प्रस्तावित अनुच्छेद का यह आशय कदापि नहीं है कि हाउस आफ लार्डस के समान उच्चतम न्यायालय अपने स्वयं के निर्णय के बंधन में रहे। उच्चतम न्यायालय अपने निर्णय को बदलने में और पहले की गई धारणा से भिन्न धारणा करने में स्वतंत्र होगी। जहां तक भाषा का संबंध है मुझे पूर्ण संतोष है कि इस आशय की पूर्ति हो जाती है।

***श्री एच.वी. कामत:** तो फिर ''अन्य सब न्यायालय'' क्यों न कहें?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** ''सब न्यायालय'' का अर्थ ''अन्य सब न्यायालय'' है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 117 में ''all courts'' शब्दों के स्थान में ''all other courts'' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 117 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 117 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 118

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 118।

(संशोधन संख्या 1949 और 1950 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 118 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 118 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 119

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1951 नियम विरुद्ध ठहराया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, अपने संशोधन संख्या 1952 में मैं जिस बात को उठाना चाहता हूं वह एक साधारण सी बात है। यह अनुच्छेद इस विचार को व्यक्त करता है कि उच्चतम न्यायालय अपनी सम्मति राष्ट्रपति को दे अथवा अपने स्वविवेक के अंतर्गत वह अपनी सम्मति को रोक भी सकता है। मैं समझता हूं कि इसका आशय यह है कि जब राष्ट्रपति किसी विषय को उच्चतम न्यायालय की सम्मति के लिये भेजता है तो उच्चतम न्यायालय के लिये और कोई चारा नहीं हैं यदि वह आशय नहीं है तब तो भाषा ठीक है पर यदि आशय यह है कि राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को किसी विषय के उल्लेख करने पर उस विषय पर उसे राष्ट्रपति को अपनी सम्मति देनी होगी तब तो ''shall'' शब्द आना चाहिये। इस विषय का मैं स्पष्टीकरण चाहता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उच्चतम न्यायालय पर कोई बंधन नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** तो मैं अपना संशोधन पेश नहीं करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 1953 नियम विरुद्ध ठहराया जाता है और संशोधन संख्या 1954 शाब्दिक है।

श्री एच.वी. कामतः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 119 के खंड (2) में 'decision' शब्द के स्थान में 'opinion' शब्द और 'decide the same and report the fact to the President' शब्दों के स्थान में 'submits its opinion and report to the President' शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, मूल रूप में मैंने इन्हें दो पृथक् संशोधनों के रूप में भेजा था पर उनको एक संशोधन में सूचीबद्ध कर दिया गया है। यदि सदन द्वारा यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो इस अनुच्छेद का प्रसंगान्तर्गत खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> ''The President may notwithstanding anything contained in clause (i) of the proviso to article 109 of this Constitution, refer a dispute of the kind mentioned in the said clause to the Supreme Court for opinion and the Supreme Court shall thereupon, after giving the parties an opportunity of being heard, submit its opinion and report to the President.''

यदि हम खंड (1) को सावधानीपूर्वक पढ़े तो यह विदित होगा कि उसमें जिस बात का उल्लेख किया गया है वह है किसी ऐसे विषय पर 'उच्चतम न्यायालय की सम्मति' जिसे राष्ट्रपति उस न्यायालय के पास भेजना उचित अथवा आवश्यक समझे...।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** श्रीमान्, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि इस अनुच्छेद 119 को स्थगित किया जाये क्योंकि इसमें भी अनुच्छेद 109 से 114 अनुच्छेदों तक का उल्लेख है जिनको स्थगित रखने के लिये हम निश्चय कर चुके हैं।

श्री एच.वी. कामतः फिर तो, श्रीमान्, अपने संशोधन को बाद में रखने के अधिकार को मैं सुरक्षित रखूंगा।

अनुच्छेद 120

(संशोधन संख्या 1956 और 1957 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 120 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 120 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 121

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं निवेदन करूंगा कि इस अनुच्छेद को स्थगित रखा जाये।

अनुच्छेद 122

***माननीय श्री बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, में प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि वर्तमान अनुच्छेद 122 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'122. *Officers and servants and the expenses of the Supreme Court.*— (1) Appointments of officers and servants of the Supreme Court shall be made by the Chief Justice of India or such other judge or officer of the court as he may direct:

Provided that the President may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the court shall be appointed to any office connected with the Court, save after consultation with the Union Public Service Commission.

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) Subject to the provisions of any law made by Parliament, the conditions of service of officers and servants of the Supreme Court shall be such as may be prescribed by rules made by the Chief Justice of India or by some other judge or officer of the court authorised by the Chief Justice of India to make rules for the purpose:

Provided that the salaries, allowances and pensions payable to or in respect of such officers and servants shall be fixed by the Chief Justice of India in consultation with the President.

(3) The administrative expenses of the Supreme Court, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the court, shall be charged upon the revenues of India, and any fees or other moneys taken by the court shall form part of those revenues.'

इस परिवर्तित प्रारूप का उद्देश्य उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता के लिये एक और भी अधिक अच्छा उपबंध बनाना है और यह उपबंध बनाना भी है कि उच्चतम न्यायालय के प्रशासी व्यय भारत के राजस्व पर भारित होंगे।

श्रीमान्, इस संशोधन पर एक संशोधन है जिसको मैं इस समय पेश करना चाहूंगा।

''कि संशोधन संख्या 1967 में प्रस्तावित अनुच्छेद 122 के खंड (2) के परन्तुक के स्थान में निम्न परन्तुक रखा जाये:

'Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the President.''

***अध्यक्ष:** इस संशोधन पर श्री कपूर का एक संशोधन है।

***श्री जसपतराय कपूर:** वह डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन में आ जाता है, अत: उसको पेश करना मैं अनावश्यक समझता हूं।

(संशोधन संख्या 1968 और 1996 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** तो फिर डाक्टर अम्बेडकर का ही संशोधन है। सर्वप्रथम मैं उस संशोधन को लूंगा जिसको उन्होंने स्वयं अपने संशोधन पर पेश किया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा। डा. अम्बेडकर के संशोधन में एक विशिष्ट बात है जिसकी ओर मैं इस सदन का विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। मैं खंड (3) का उल्लेख करता हूं जो उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों से संबंधित अथवा उनको दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन सहित न्यायालय के प्रशासी व्यय को भारत के राजस्व पर भारित करता है। श्रीमान्, इस विशिष्ट खंड की ओर मैं इस सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं क्योंकि हम लोगों में से कुछ का यह विचार है कि भारत के राजस्व पर भारित होने वाले समस्त पदों को एक विशिष्ट अनुच्छेद के अन्तर्गत ले आना चाहिये और यदि मुझे ठीक-ठीक याद है तो वह अनुच्छेद 92 है; इस विशिष्ट खंड को यहां क्यों आने दिया गया है इसका एकमात्र कारण यह है कि अनुच्छेद 92 में छोड़ दिया गया है—उस पर सदन द्वारा विचार नहीं किया गया है। अत: मैं यह कहना चाहूंगा कि उचित समय पर जबकि अनुच्छेद 92 पर विचार किया जाये सदन इस खंड (3) को और इसके समान अन्य सब खंडों को हटाकर चाहे वे कहीं पर हों, यहां हों अथवा अध्यक्ष की व्यवस्था में हों या महालेखा परीक्षक की व्यवस्था में हों, या लोक सेवा आयोग के अधीन हों, उन सबको एक ही शीर्षक के अन्तर्गत लाया जाये जिससे कि लोग और कम से कम भावी विधान मंडल के सदस्य यह जान जायें कि वे कौन-कौन से पद हैं जो नितांत अनिवार्य हैं और जो भारत के राजस्व पर भारित हैं।

दूसरी बात यह है। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं पर मैं सोचता हूं कि इस सदन के सदस्यों द्वारा यह समझ लिया जाये और मैं आशा करता हूं कि वे लोग जो न्याय का प्रशासन करेंगे तथा भविष्य में देश का प्रशासन करेंगे यह समझ लें कि यह एक प्रवर्त्तनशील उपबंध ही नहीं वरन् एक रक्षा कवच भी है। इसके संबंध में केवल एक बात यही है कि न्यायाधीशों द्वारा कर्मचारीवृन्द की नियुक्ति जैसा विषय सामान्यतया कार्यपालिका के क्षेत्र के बाहर रखा जाये अन्यथा इन पदों को बजट में रखने के लिये कार्यपालिका को उपक्रम करना पड़ेगा। कारण यह है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाये रखना चाहिये और यह कि न्यायपालिका यह न समझे कि वह कार्यपालिका की कृपा पर अवलम्बित है जो समय-समय पर उसे प्राप्त होती रहेगी और जिससे न्यायपालिका द्वारा किये जाने वाले उन निर्णयों पर स्वाभाविक रूप से प्रभाव पड़ेगा जो तत्कालीन कार्यपालिका के हितों से संबंध रखते हैं। इसके साथ ही साथ, श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि इस सदन का अथवा इस संविधान के बनाने वालों का यह उद्देश्य नहीं है कि वे विशिष्ट कृपा प्राप्त निकायों की सृष्टि करना चाहते हों जो स्वयं कार्यपालिका और विधान मंडल से पूर्णतया स्वतंत्र होकर एक प्रकार से सामान्य होकर राजनैतिक निकाय से उच्च निकाय के रूप में कार्य करते हुए सामज्य के अंतर्गत राज्य बन जायें। यदि ऐसा होता तो मैं समझता हूं कि कदाचित इस प्रकार के उपबंध केवल उच्चतम न्यायालय के प्रति ही नहीं वरन् महालेखा परीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग, संसद के दोनों सदनों के राष्ट्रपति और

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अध्यक्ष इत्यादि के प्रति भी पुर:स्थापन करने में हम सावधानी रखते क्योंकि ऐसा करने से हम ऐसी अनेकों संस्थाओं की सृष्टि कर देंगे जिनकी वह स्थिति हो जायेगी कि अपनी उच्चता प्रदर्शन करने के प्रत्येक प्रयत्न में उनका कार्यपालिका से विरोध होना अवश्वमभावी है। वास्तविक व्यवहार में यह अधिक अच्छा है कि ये समस्त संस्थायें लोक सेवा के लिये भर्ती, तरक्की की शर्तें और कर्मचारीवृन्द को दिये जाने वाले वेतन के विषयों में प्रचलित विनियमों के अनुसार न्यूनाधिक रूप में कार्य करें। इस प्रकार के अन्य निकाय जो यद्यपि इस प्रकार के संवैधानिक उपबंध से सुसज्जित नहीं हैं, उनमें जो कुछ हो रहा है इस विषय में मेरा तुच्छ अनुभव यह है कि लोक सेवा में पृथक विभाग करने से कोई लाभ नहीं होता है। बहुधा यह होता है कि तरक्की अथवा राष्ट्र के समस्त विषय एक छोटे से क्षेत्र अथवा किसी विशिष्ट निकाय के छोटे से दायरे में सीमित कर दिये जाते हैं तो बहुधा यही होता है कि जो व्यक्ति उस निकाय के सर्वोच्च कार्यपालिका पद पर पहुंच जाता है और यदि उस विशिष्ट पद को राज्य की साधारण सेवाओं की श्रेणी में, चाहे वह केन्द्रीय हो अथवा प्रांतिक, नहीं रखा जाता है तो वह हमेशा के लिये वही बना रहता है; इस प्रकार के गतिरोधों में पड़कर कोई विशेष व्यक्ति जो इस संकीर्ण श्रेणी के उच्च पद तक उठकर यह देखता है कि वह बिना पदच्युत हुये अथवा बिना हटाये उससे मुक्त नहीं हो सकेगा तो उन गतिरोधों से बहुत सी असुविधायें हो जायेंगी; परन्तु यदि इन विशिष्ट निकायों की स्थापना सामान्य सेवा का अंग बन जाती हैं तो उसमें नियुक्त कोई भी व्यक्ति जिसको किसी एक विभाग के लिये अयोग्य समझा जाता है उसे किसी अन्य कार्य वाले विभाग में भेजा जा सकता है। यह तर्क सम्मत है कि पारित करते समय यह स्पष्ट करना अच्छा होगा कि तत्संबंधी प्राधिकारियों द्वारा इस धारा के अन्तर्गत दी हुई शक्तियों के प्रयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता में यह अनुच्छेद वास्तव में एक अड़चन के रूप में प्रवृत नहीं होगा फिर भी यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि इस संविधान के बनाने वाले तथा इस सदन की यह मंशा नहीं है कि इन गतिरोधों की उत्पत्ति की जाये और ये निकाय समय की आवश्यकताओं को ध्यान में न लाते हुए तथा अन्य सेवाओं में जो शर्तें प्रवृत्त हैं उनको ध्यान में न रखते हुए कृत्य करें। ऐसा हो सकता है कि साधारण सेवाओं के वेतनों में कमी की जाये और यदि कार्यपालिका की इस प्रार्थना को कि वे भी ऐसा ही करें मुख्य न्यायाधिपति इस आधार पर अस्वीकार करता है कि जो कुछ कार्यपालिका के विभागों में होता है उससे उसका कोई संबंध नहीं है और जहां तक कि उसके विभाग का संबंध है वह वेतनों में कमी नहीं होने देगा तो इसका यह अर्थ होगा कि हम इस निकाय को पृथक रखने में सहायक हो रहे हैं और यह झगड़े की जड़ होगी। अत: चूंकि कार्यपालिका और सेवाओं का घनिष्ठ संबंध है मैं आशा करता हूं कि मुख्य न्यायाधिपति और महालेखा परीक्षक जैसे पदाधिकारियों को इस विशेष स्थिति में रखने के तथ्य मात्र का यह आशय नहीं होगा कि वे अपने अधिकार का पूर्णरूपेण प्रयोग करें वरन् यह होगा कि ऐसी स्थिति में उस शक्ति के दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना के विरुद्ध रक्षाकवच है जो कार्यपालिका को उस समय के लिये दिया गया है जबकि अपने अधीन सेवाओं में वृद्धि करने की अथवा भर्ती इत्यादि के विषय की आवश्यकता है। मैं समझता हूं कि इन बातों के सहित मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई प्रस्थापना पारित की जा सकती है।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश लिये गये संशोधन (संख्या 1967) का मैं हार्दिक समर्थन करता हूं और उस दिन प्रो. शाह के संशोधन का विरोध करते हुए जो कुछ मैंने कहा था उस पर एक बार पुन: जोर देने के लिये इस अवसर का लाभ उठाता हूं कि इस संविधान ने यद्यपि शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया है परन्तु न्यायपालिका की स्वतंत्रता की यथसंभव अधिक से अधिक सीमा तक रक्षा की है। अत: ऐसा कोई भय कि इस स्वतंत्रता का निर्वाह इस कारण नहीं किया जायेगा कि हमने शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया है नितांत निर्मूल है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता की सदैव रक्षा करना इस सदन का कर्त्तव्य होना चाहिये और मैं आशा करता हूं कि यही होगा।

मेरे मित्र जो सबसे अन्त में बोले हैं उन्होंने इस संशोधन का समर्थन किया है जिसका मैं भी समर्थन करता हूं। परन्तु जो बातें उनके मुख से प्रकट हुई हैं उनमें से कुछ बातों से मैं यदि स्वयं सहयोग न दूं तो वे मुझे क्षमा करेंगे। न्यायपालिका राज्य का एक स्वतंत्र अंग है। मैं उनसे इस बात में पूर्णतया सहमत हूं कि हम साम्राज्य के अन्तर्गत राज्य नहीं रख सकते हैं। विधान-मंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका ये सब राज्य के अंग हैं जिनकी एक सुव्यवस्थित संविधान में अपने-अपने उपयुक्त तथा क्रमानुसार स्थानों में रक्षा होनी चाहिये। अत: जैसा कि इस खंड में कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियां, भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा अथवा किसी अन्य न्यायाधीश या न्यायालय के पदाधिकारी द्वारा जिसे वह (मुख्य न्यायाधीश) आदेश दे दे, की जायें, यह बहुत आवश्यक है। ये पदाधिकारी न्याय प्रशासन से संबंधित कार्य करने वाले हैं। वे पदाधिकारी नहीं हैं जिनका तबादला कार्यपालिका में अथवा अन्य विभागों में किया जा सकता है और यह आवश्यक है कि ऐसे पदाधिकारियों की श्रेणी जो न्याय प्रशासन से संपर्क रखती हैं वह जिस न्यायपालिका की सेवा करती है उसमें अपनी पूर्ण भक्ति रखे। संभव है कि अर्हतायें भी भिन्न प्रकार की हों। इस संबंध में लोक सेवा आयोग का निर्देश संबंधी उपबंध लाभकारी है। उसका यह आशय होगा कि नियुक्तियों के विषय में कोई पक्षपात नहीं होगा। यदि कोई व्यक्ति एक बार न्यायपालिका के कर्मचारीवृन्द में नियुक्त हो जाता है तो उसे उसी विभाग के संपर्क में रहना चाहिये। इस कारण खंड (1) बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश किया संशोधन आवश्यक है, क्योंकि जहां तक वैतिक भार का संबंध है उसको तो विधान मंडल ही विनिश्चित कर सकता है। आखिरकार देश के वित्त का उत्तरदायित्व तो संसद पर है। अत: वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन का अनुमोदन राष्ट्रपति द्वारा अर्थात् शक्ति प्राप्त दल द्वारा होना चाहिये। पर इस संबंध में इस विषय को हमें इस प्रकार से आरक्षित करना चाहिये कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सदा पोषण होता रहे।

इस संबंध में मैं इस सभा का ध्यान फेडरल न्यायालय तथा प्रांतीय उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों द्वारा दिये गये ज्ञापन में की गई टीकाओं की ओर आकर्षित करूंगा।

[श्री के.एम. मुन्शी]

उन्होंने जो कुछ कहा है वह यह है:

> ''इस देश में अंग्रेजों द्वारा स्थापित न्याय प्रशासन की प्रणाली को धन्यवाद, जिसके कारण न्यायपालिका ने समस्त विषयों में अब तक नागरिकों के व्यक्तिगत अधिकारों की कार्यपालिका शक्ति के अपहरण तथा आक्रमण से रक्षा करने के कार्य में स्वतंत्र रूप से भाग लिया। पर दुर्भाग्यवश अभी-अभी न्यायपालिका की सत्ता और गौरव से विलग होने की तथा अपनी शक्तियों को क्षीण करने की प्रवृत्ति देखने में आई है जो यदि नहीं रोकी गई तो बहुत ही असंतोषजनक होगी।''

इस संशोधन में पूरे के पूरे उपबंध का आशय है कि सत्ता या गौरव तथा जो शक्तियां उन्हें प्राप्त है उनको क्षीण होने से रोके। यह आवश्यक है कि प्रजातंत्र में परस्पर नागरिकों, राज्यों और यहां तक कि भारतीय सरकार और राज्यों के झगड़ों को मिटाने के लिये न्यायपालिका होनी चाहिये। यदि यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जाती है तो हम शीघ्र ही सर्वाधिकारवाद की ओर उन्मुख हो जायेंगे ऐसा मेरा विश्वास है। मैं जानता हूं कि देश एक संकट काल में से गुजर रहा है अत: यह स्वाभाविक है कि अपनी राष्ट्रीय सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये कार्यपालिका को बड़ी-बड़ी शक्तियां धारण करना होगा। पर इसके साथ-साथ राष्ट्रीयता को अक्षुण्ण बनाये रखने की प्रजातंत्रात्मक रीति और सर्वाधिकारवादी रीति में परस्पर जो अन्तर है उसे नहीं भूल जाना चाहिये। इस संबंध में प्रजातंत्रात्मक रीति और सर्वाधिकारवादी रीति के मध्य न्यायपालिका की स्वतंत्रता सीमांकन रेखा है। मुझे विश्वास है कि इस संविधान के उपबंध पर्याप्त रूप से न्यायपालिका की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति करते हैं। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र सर्वश्री कृष्णमाचारी और मुंशी के भाषणों के पश्चात् जिनको सभा ने अभी-अभी सुना है, सभा की स्वीकृति के लिये इन दोनों भागों पर कुछ निवेदन करने के हेतु बहुत ही कम शब्द आवश्यक हैं।

दो सिद्धांत अन्तर्ग्रस्त हैं। एक यह कि आपको न्यायपालिका की स्वतंत्रता के पोषण के योग्य होना चाहिये और यदि अपने ही कार्यालय पर न्यायपालिका का पर्याप्त नियंत्रण न हो तो उसकी स्वतंत्रता संदेहात्मक हो सकती है। यदि उसका कार्यालय पद वृद्धि अथवा तरक्की के लिये किसी अन्य क्षेत्र पर निर्भर करता है। संभव है कि इसके द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता नष्ट हो जाये। पर साथ ही साथ यह मानना पड़ेगा कि न्यायपालिका और उसके कार्यालय को अपने भत्ते और वेतन लोकनिधि से लेने पड़ेंगे। अन्तत: जिस व्यक्ति पर प्रभाव पड़ेगा वह करदाता है। अत: एक ओर जबकि आपको न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा करनी चाहिये तो दूसरी ओर एक प्रजातंत्र राज्य में करदाता के हितों की भी रक्षा करनी होगी। यह तभी हो सकता है जबकि देश की उस सरकार को पर्याप्त नियंत्रण शक्ति दी जाये जो वित्त संबंधी विषय में लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है। वर्तमान उपबंध का प्रभाव यह है कि प्रत्येक बार व्यय सदन के मत के अधीन नहीं है। यह अच्छी बात है। लोक-निधि पर वह एक मुख्य भार बना दिया गया है। इसका प्रभाव यह है कि संबंद्ध न्यायालय अपनी नियुक्तियों पर पूर्ण नियंत्रण रखेगा। साथ-ही-साथ यह उपबंध

वहां तक लोक और सरकार के हितों की रक्षा करता है जहां तक कि देश के वित्त की रक्षा करने के लिये सरकार लोक की प्रतिनिधि है। अर्थात् यदि वेतनों में वृद्धि की जाती है तो मुख्य न्यायाधिपति अथवा अन्य न्यायिक प्राधिकारी अपना मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते हैं। यह समस्या वास्तव में प्रथम कांग्रेस मंत्रिमंडल के समय उत्पन्न हुई। मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ने यह स्थिति ग्रहण की कि उच्च न्यायालय प्रांतीय सरकार के नियंत्रण के अधीन अन्य कार्यालयों से विभिन्न आधार पर स्थिति है। मंत्रिमंडल ने उसका विरोध किया और यह विनिश्चित किया कि अपने कार्यालय पर उनका पूर्ण नियंत्रण हो सकता है पर वेतन इत्यादि की साधारण माप श्रेणी के संबंध में उसे औरों के समान होना पड़ेगा। यह एक महान मूल सिद्धांत है। जब भी आप किसी विशिाष्ट कार्यालय के वेतन अथवा उपलब्धियों पर विचार करें आपको उसकी व्यवस्था के देश के कारण वित्त संबंधी ढंग से करनी चाहिये।

साधारण लोक अर्थव्यवस्था तथा देश की वित्त संबंधी स्थिति पर बिना विचार किये आप सरकारी सेवकों अथवा सरकारी पदाधिकारियों के किसी विशिष्ट वर्ग और यहां तक कि कभी-कभी न्यायाधीश तक के लिये कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते हैं। मूल प्रस्थापना तथा संशोधन द्वारा, जो सभा के सम्मुख प्रस्तुत किये गये हैं, तीनों सिद्धांतों की पूर्ति हो जाती है। इन परिस्थितियों में मैं निवेदन करता हूं कि सभा दोनों संशोधनों को स्वीकार करे क्योंकि वे न्यायपालिका के गौरव और स्वातंत्र के पोषक होने के साथ-साथ सामान्य करदाता के हितों की भी रक्षा करते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महादेय, कभी-कभी यह कहा जाता है कि सारे तर्क वादी के पक्ष में थे पर डिक्री उस पर हुई। ठीक ऐसा ही मुझे अनुभव हुआ जब मैंने इन संशोधनों को पढ़ा तथा मेरे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और अन्य वक्ता जिन्होंने मेरे समक्ष विचार प्रकट किये हैं उनके भाषणों को सुना। वे चाहते हैं कि उच्चतम न्यायालय कार्यपालिका से पूर्णतया स्वतंत्र रहे और न्यायाधीशों के वेतन समय-समय पर विधान मंडल के मत पर छोड़े जायें। उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों को दिये जाने वाले अथवा उनसे संबंधित वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन को नियत करने का क्षेत्राधिकार, यह अनुच्छेद 122 मुख्य न्यायाधिपति को देता है। इस संशोधन द्वारा इसमें रूप भेद करने का प्रयास किया गया है। यहां जिस रूप में यह खंड है। उसके अनुसार मुख्य न्यायाधिपति को राष्ट्रपति के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। उसमें यह कहा गया है कि ''राष्ट्रपति से परामर्श करने पर''। अत: वेतन और भत्ते नियत करने के लिये मुख्य न्यायाधिपति स्वतंत्र है जो स्वयं उसके तथा उसके पदाधिकारियों की स्वतंत्रता से संगत है। ''परामर्श'' शब्द का यहां जानबूझकर प्रयोग किया गया है। अब उन्होंने ''परामर्श'' शब्द को हटाकर ''अनुमोदन'' शब्द रखने का संशोधन रखा है। ''अनुमोदन'' ''परामर्श'' से सर्वथा भिन्न है। राष्ट्रपति को अब अधिकार है कि वह इसमें अड़चन डाल दे। पर ऐसा करने वाले राष्ट्रपति कौन हैं। भारतीय सरकार के अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर जनरल को किसी व्यक्ति से परामर्श करने की आवश्यकता न थी और

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

वह पूर्ण रूप से उसके स्वविवेक के अधीन था कि वह जो कुछ चाहे करे। यहां इस संविधान में राष्ट्रपति का अर्थ है ''अपने मंत्रियों के परामर्श युक्त''। अत: वास्तव में जो कुछ होगा वह यह है कि इस समय मुख्य न्यायाधिपति को मंत्री के स्वर में स्वर मिलाना होगा। यह कहा जा सकता है कि समस्त मंत्रिमंडल राष्ट्रपति को मंत्रणा देगा। मंत्रिमंडल में विधि अथवा विधि और व्यवस्था के मंत्री की बुलन्द आवाज होगी। सामान्यतया मंत्री की आवाज उसके सचिव की आवाज है। अत: उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को गृह विभाग अथवा विधि विभाग के सचिव मात्र के स्वर में स्वर मिलाना पड़ेगा। इस संशोधन का यही अर्थ है कि वह मंत्रिमंडल पर निर्भर रहेगा और तत्कथित न्यायपालिका की स्वतंत्रता छीन ली जायेगी अत: मैं नहीं समझ पाता हूं कि यह संशोधन किस प्रकार न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संगत है और न इसमें मुझे कोई बुद्धिमानी दिखाई देती है। मूलरूप में इस खंड के बनाने के पश्चात् बनाने वालों ने अपना मत बदल दिया है और वे इस खंड को भारतीय सरकार के अधिनियम के उपबंध के समान रूप में रखना चाहते हैं। अनुकूलित रूप में भारतीय सरकार के अधिनियम की धारा 216 इस विषय की ओर निर्देश करती है:

''फेडरल न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों को दिये जाने वाले तथा उनसे सम्बन्धित समस्त वेतन, भत्ते और उपवेतन सहित फेडरल न्यायालय का प्रशासी व्यय अधिराज्य के राजस्व पर भारित होगा और न्यायालय द्वारा लिया गया कोई देय अथवा अन्य धन उस राजस्व का भाग होगा।''

धारा 242 (4) परन्तुक (ख) इस प्रकार है:

> "मुख्य न्यायाधिपति द्वारा उक्त उपबंध (2) के अन्तर्गत निर्मित नियमों का वेतन भत्ते, अवकाश अथवा निवृत्तिवेतन से जहां तक संबंध है उसके लिये गवर्नर जनरल का अनुमोदन अपेक्षित है।"

वे इस उपबंध का अनुकरण करना चाहते हैं। गवर्नर जनरल बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में इस देश के समस्त विभागों पर क्षेत्राधिकार रखना चाहता था जिनमें उच्च न्यायालय तथा फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश भी शामिल हैं। हम इस उपबंध का अनुकरण करें? मैं इस संशोधन के पक्ष में नहीं हूं। यह संशोधन न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के उस सिद्धांत के संगत नहीं है जिसके लिये हम सब वचनबद्ध हैं और जिसके पक्ष में हम सब हैं।

इसके पश्चात्, श्रीमान्, खंड (2) के संबंध में, जो वेतन इत्यादि सहित उच्च न्यायालय के व्यय को संघ के राजस्व को भारित करता है, कुछ क्षेत्रों में कुछ शंकायें की गई हैं कि क्या न्यायाधीशों के वेतन के संबंध में ही वह भारित होगा अथवा अन्य पदाधिकारियों और सेवकों के वेतन इत्यादि के संबंध में भी भारित होगा। यह दावा किया गया था कि यदि ऐसा किया जाता है तो अनेक अलग-अलग विभाग तथा स्वायत्तशासी प्राधिकारियों की उत्पत्ति हो जायेगी उच्चतम न्यायालय एक स्वायत्तशासी निकाय है जो अपने विषयों

को स्वयं विनियमित करता है जिनमें उसके पदाधिकारियों के वेतन और भत्ते आ जाते हैं। यह एक विभाग है। महालेखा-परीक्षक का दूसरा विभाग है। लोक सेवा आयोग तीसरा विभाग है। अत: कुछ लोग जो यह चाहते थे कि समय-समय पर संसद का नियंत्रण रहे वे इस खंड को भी निकालना चाहते थे। मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। यह खंड रहना चाहिये क्योंकि जब आपने एक ओर मुख्य न्यायाधिपति को वेतन और निवृत्ति वेतन का विनियमन करने दिया है तो दूसरी ओर समय-समय पर आप संसद को इन बातों में बाधा देने की आज्ञा नहीं दे सकते हैं। यदि आप ऐसा करते हैं तो पूरी की पूरी बात रद्द हो जायेगी। अब भी देर नहीं हुई है और मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से निवेदन करूंगा कि वे अपने विनिश्चय पर पुनर्विचार करें। यदि वे यही समझते हैं कि यह बना रहे तो मैं इस संशोधन का विरोध नहीं करता हूं। मुझे यह संशोधन स्वीकार है।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति जी, मैं श्री कृष्णमाचारी साहब की अमेंडमेंट की मुखालफत करता हूं।

किसी भी कांस्टीट्यूशन में तीन चीजें जरूरी होती हैं एक तो इंडिपेंडेंट ज्यूडीशियरी, दूसरा लेजिस्लेचर और तीसरा एक्जीक्यूटिव अगर कोई आदमी पूछे कि इन तीनों में से कौन सा बड़ा है और कौन सा छोटा है तो इस सवाल को पूछने वाले की ही गलती होगी क्योंकि यह तीनों ही बोडी पोलिटिक के भिन्न और शामिल अंग हैं। जिस कांटीट्यूशन में ज्यूडीशियरी को पूरी तरह से आजादी हासिल नहीं होती वह कांस्टीट्यूशन कभी भी किसी मुल्क की जनता की आजादी के सवाल की गारंटी नहीं करता। मगर हमें देखना चाहिये कि हमने उस ज्यूडिशियरी को क्या अख्तियार दे दिया है। तो उससे रोशन होगा कि इस किस्म के इख्तियार कायम करने हमारे लिये वाजिब और जायज हैं या नहीं।

जनाब के रूबरू दफा 109 जिस पर अभी तक बहस नहीं हुई है उसके अलफाज बड़े बाजेह हैं। उस ज्यूडिशियरी के समान गवर्नमेंट ऑफ इंडिया खुद और मुद्दई और मुद्दालय के पेश होंगे। चुनाच: उसके अलफाज दफा 109 में साफ हैं कि बतौर फरीक मुकदमा गवर्नमेंट व स्टेट पेश होंगे। इसके अलावा अगर हम सारे कांस्टीट्यूशन में दफात को देखें दफा 7 से 30 तक Fundamental Rights को देखें, यदि और दफात को देखें तो पता चलेगा कि सुप्रीम कोर्ट हमारी आजादी की नीव है। सुप्रीम कोर्ट की आजादी किसी इंडिविज्युअल के मातहत कर देना जिसका अख्तियार एक्जीक्यूटिव नेचर का है या ऐसी नेचर का कहा जा सकता है, दुरुस्त और जायज नहीं हैं जो दफा 122 पहले थी उसके अन्दर अलफाज बड़े सीधे थे:

> ''The salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the Supreme Court shall be fixed by the Chief Justice of India in consultation with the President.''

मैं अदब से अर्ज करता हूं कि उसके अन्दर अगर यह लफ्ज़ बढ़ा दिये जायें ''ऐप्रुवल ऑफ प्रेसीडेंट'' (approval of the President) तो ज्यूडिशियरी की आजादी मुकम्मिल

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

नहीं होगी और ऐसा करना मुनासिब नहीं होगा। इन शब्दों को बढ़ाना जाहिर करता है कि डर है कि ज्यूडीशियरी अपने नौकरों की तनुख्वाह इस तरह बढ़ायेगी जिसको गवर्नमेंट पसन्द नहीं करेगी। क्या मैं यह अर्ज कर सकता हूं कि कोई भी ज्यूडिशियरी का अफसर इसी तरह कह सकता है कि प्रेसीडेंट पर भी उसको यही शुबहा है, लेजिस्लेचर पर भी उसको यही शुबहा है कि न मालूम कल कितने नये मिनिस्टर बढ़ा दिये जायेंगे। मेरी राय में इस किस्म के शुबाहात इस तरह से प्रेसीडेंट पर या चीफ जस्टिस पर करना इस बात को जाहिर करता है कि हमको उन पर पूरा भरोसा नहीं है। इस वास्ते जहां तक कि ज्यूडीशियरी का सवाल है मैं साफ तौर पर अर्ज करना चाहता हूं कि चीफ जस्टिस की पावर्स के साथ इस तरह से खेलना हर्गिज जायज नहीं है। हमारा फर्ज है कि हम ज्यूडिशियरी को लेजिस्लेचर और एक्जीक्यूटिव दोनों के साथ बराबरी का दर्जा दें। इनके कोआर्डिनेशन पर हमारी किस्मत, हमारी आजादी और हमारी हर चीज जो हिंदुस्तान के अन्दर ऐसी है कि जिसको हम पनपने देना चाहते हैं, मुनहसिर है। इनमें से अगर आप किसी एक के भी साथ इस तरह से खेलना चाहें तो ऐसी दिक्कत पैदा हो सकती है कि ज्यूडीशियरी हमारी सारी आजादी को खत्म कर सकती हैं, लेजिस्लेचर ऐसा कानून बना सकता है कि ज्यूडीशियरी को खत्म कर सकता है। ऐक्जीक्यूटिव से भी इसी तरह का डर पैदा हो सकता है। इसलिये इन तीनों के कोआर्डिनेशन से ही हमारी भलाई हो सकती है। इन पर शुबहात करने की कोई वजह नहीं है कि आप यह रखें ''with the approval of the Pressident'' गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट के सेक्शन 342 में जो प्रोवाइजो है उसके बारे में मैं अर्ज करना चाहता हूं कि पुरानी गवर्नमेंट कुछ भी करना चाहती हो, हमें उससे मतलब नहीं है। आज तो हमारा ताल्लुक है अपनी ज्यूडीशियरी से, कि वह बिल्कुल इंडिपडेंट होनी चाहिये जिससे कि हम उस पर पूरा भरोसा कर सकें। इसके लिये जरूरी है कि वह इंडिपेंडेटली काम करे और प्रेसीडेंट को या लेजिस्लेचर उस से interfere न करे सके। इसलिये यह जरूरी है कि उसके अख्तियारात में कमी न की जाये। जहां हम यह कर रहे हैं कि प्रेसीडेंट की सैलरी चार्ज आन गवर्नमंट रेवेन्यू होगी, तो वैसी ही चीफ जस्टिस की भी चार्ज आन दी रेवेन्यूज हो। इसी तरह से जो इस किस्म के अफसरान हैं कि जिनकी इंडिपेंडेंस इस सारे कांस्टीट्यूशन में ठीक तौर पर काम करने के वास्ते जरूरी है उन सबका ही खर्चा चार्ज आन दी रेवेन्यूज होना चाहिये। जब आपने एक दफा रकम उनके वास्ते मुअय्यन कर दी तो चीफ जस्टिस को अख्तियार होना चाहिये कि वह उसको चाहे जैसे खर्च करे और लेजिस्लेचर और एक्जीक्यूटिव उसमें दखल न दे सकें।

आपने अभी डाइरेक्टिव प्रिंसिपल में पास किया है कि आप ज्यूडिशियरी और एक्जीक्यूटिव का सैपरेशन चाहते हैं। मैं पूछना चाहता हूं कि इसको आप कैसे इफेक्ट कर सकते हैं अगर आप चीफ जस्टिस को और उसके महकमे को पूरी आजादी खर्च करने की नहीं देते। क्या आप चाहते हैं कि छोटी-छोटी पोस्ट के लिए चीफ जस्टिस तो कहे कि वह जरूरी है और फिर प्रेसीडेंट पर प्रोपोजल भेजें तो प्रेसीडेंट के मानी आखिर में प्राइम मिनिस्टर के और उस मिनिस्टरी के अन्दर उनके बड़े सैक्रेटरी के और वह सैक्रेटरी वगैरह कमेंट करेंगे कि यह पोस्टें ठीक हैं या नहीं? क्या यह जायज होगा कि चीफ जस्टिस इस तरह

से एक-एक पोस्ट के लिये लिखे? जिनके हाथ में आप सारे हिंदुस्तान की आजादी देना चाहते हैं; तो फिर क्या वजह है कि आप उन पर इस बारे में शुबाह करें कि वह इस काम को अच्छी तरह से नहीं कर सकेंगे। मैं अदब से अज्र करना चाहता हूं कि इस तरह की जो अमेंडमेंट हैं, इन सब की तह में यह चीज है कि यह डर रहे हैं कि कहीं चीफ जस्टिस ऐसे न हो जायें कि वह बहुत रुपया खर्च कर दे। और सारे कांस्टीट्यूशन हरदम वरहम कर दें। इस शुबाह की कोई वजह नहीं है। हमने आज तक हिंदुस्तान में ब्रिटिश गवर्नमेंट के जमाने में भी जबकि उनकी ज्यूडिशियरी थी, उनके दबाव में न थी, यह देखा कि उस वक्त भी ज्यूडिशियरी ने एक्जीक्यूटिव की परवाह नहीं की। क्या हम नहीं जानते कि दफा 26 पब्लिक सेफ्टी एक्ट को हमारी फेडरेल कोर्ट ने नाजायज करार दे दिया था अगर आप चाहते हैं कि इस देश में हमें वही आजादी हासिल रहे बल्कि उससे बढ़कर आजादी यहां कायम हो जो कि अब तक रही है तो यह जरूरी है कि आप ज्यूडीशियरी का मरतबा एक्जीक्यूटिव या लेजिस्लेचर से कम न होने दें।

इस असेम्बली के मेम्बर साहिबान को याद होगा कि जब दफा 15 पर बहस हो रही थी उस वक्त यह सवाल था कि आया लेजिस्लेचर जब कोई कानून पास कर देगा तो उस कानून पर भी ज्यूडीशियरी को यह अख्तियार हो कि वह कह दे कि कानून जस्टिस के मुताबिक है या नहीं, जैसा कि अमेरिका के अन्दर दस्तूर है कि जहां तक कि हर एक आदमी की लाइफ और पर्सनल लिबर्टी का सवाल है ज्यूडिशियरी लेजिस्लेचर के बनाये कानून के बारे में राय दे सकती है कि यह जायज है या नहीं। तो उस वक्त यह सवाल दर पेश था कि ज्यूडिशियरी को इतनी पावर्स दी जाये कि वह लेजिस्लेचर के बनाये हुये कानून को भी कह दे कि यह दुरुस्त और जायज नहीं है। जबकि ऐसे सवालात आपके रूबरू पेश होते हैं और जबकि हाउस एक तरह से इसके हक में था तो मैं उम्मीद करता हूं कि आयन्दा भी जब इसके मुताल्लिक फिर कोई सवाल पेश होगा तो हाउस ज्यूडीशियरी के पूरे अख्तियारात की हिमायत करेगा। जब हम ज्यूडीशियरी को इतने अख्तियार देना चाहते हैं तो मैं अदब से अर्ज करना चाहता हूं कि किसी डर के मातहत यह नहीं करना चाहिये कि छोटे-छोटे सरवेंट्स की पोस्टों के वास्ते चीफ जस्टिस को एक्जीक्यूटिव का दस्तनिगर होना पड़े। यह अमेंडमेंट मुनासिब नहीं है और मैं इसकी मुखालिफत करता हूं।

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, यह कहना आवश्यक है कि न तो मैं इस अनुच्छेद 122 की पदावली से प्रसन्न हूं और न इसमें निहित विचार से ही। श्रीमान्, इस बात के प्रति मेरी इच्छा किसी से कम नहीं है कि देश की न्यायपालिका कार्यपालिका से पूर्णतया स्वतंत्र रहे, पर मैं समझता हूं कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को केवल न्याय प्रशासन तक ही सीमित रखा जाये और न्यायपालिका की स्वतंत्रता की आड़ में हम न्यायपालिका को उन कार्यों की शक्ति प्रदान करते हुए न चले जायें तो सामान्यतया कार्यपालिका अथवा संसद के क्षेत्राधिकार में है। अनुच्छेद 122 के अनुसार उच्चतम न्यायालय में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को भरने के लिये अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की नियुक्ति का अधिकार तथा प्राधिकार हम उच्चतम न्यायालय को, मुख्य न्यायाधिपति को और उन न्यायाधीशों को, जिनका कि मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नाम निर्देश किया जायेगा और यहां

[श्री जसपतराय कपूर]

तक कि उच्चतम न्यायालय के उन अधीन पदाधिकारियों तक को, जिनका मुख्य न्यायधिपति द्वारा नाम निर्देश किया जायेगा, सौंप रहे हैं। श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि इन सब नियुक्तियों के लिये उच्चतम न्यायालय को शक्ति सौंपने की कोई आवश्यकता है। और फिर, श्रीमान्, इस न्यायपालिका को केवल यही शक्ति नहीं सौंप रहे हैं वरन् हम इस शक्ति को बिना किसी रुकावट के पूर्ण रूप में दे रहे हैं। हम यह देखें कि खंड (1) क्या कहता है: ''Appointments of officers and servants of the Supreme Court shall be made by the Chief Justice of India or such other judge or officer of the court as he may direct,'' और आगे यह दिया हुआ है ''Provided that the President may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the court shall be appointed to any office connected with the court, save after consultation with the Union Public Service Commission.''।

श्रीमान्, यह अच्छी बात है कि इस परादिक को यहां प्रविष्ट किया गया है, पर मुझे ऐसा अनुभव होता है कि ''may'' शब्द के स्थान में ''shall'' शब्द होना चाहिये। इस परादिक में संघ के लोक सेवा आयोग से परामर्श करने के लिये निश्चित रूप से व्यवस्था होनी चाहिये। जिस प्रकार मैं इसका निर्वाचन करता हूं उससे यह आशय निकल सकता है कि संघ के लोक सेवा आयोग से परामर्श करने के लिये राष्ट्रपति नियम बनाये अथवा नहीं भी बनाये। क्योंकि उसमें यह कहा गया है कि ''Provided that the President may by rule require...'' इसका यह अर्थ नहीं होता कि सब विषयों में संघ के लोक सेवा आयोग से परामर्श लेना ही चाहिये। अत: मैं इसका बहुत स्वागत करूंगा कि यह आवश्यक बना दिया जाये कि लोक सेवा आयोग के विचारों पर सदैव विचार किया जायेगा।

खंड (2) में हम देखते हैं कि इस परादिक में यह दिया हुआ है कि इन पदाधिकारी इत्यादिकों को दिये जाने वाले अथवा उनसे संबंधित वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन राष्ट्रपति से परामर्श कर भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियत किये जायेंगे। श्रीमान्, मुझे यह कहना चाहिये कि आज माननीय डा. अम्बेडकर ने नि:संदेह पर्याप्त बुद्धिमानी से इस प्रभाव का संशोधन पेश किया है कि 'in consultation with' शब्दों के स्थान में हमें 'with the approval of the President' शब्द रखने चाहियें। यह बाद में जो विचार उत्पन्न हुआ वह वास्तव में स्वागत के योग्य है। पर मैं यह निवेदन करता हूं कि यह और भी अच्छा होता यदि आरम्भ में ये सारी नियुक्तियां स्वयं राष्ट्रपति द्वारा ही की जातीं। जिस रूप में परादिक है उसका यह आशय है कि आरम्भ में मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसके द्वारा मनोनीत कोई अन्य व्यक्ति ही इस विषय में अपना दिमाग लगायेगा। वह कुछ व्यक्तियों को चुनेगा उनके वेतन और भत्ते नियत करेगा और इसके बाद वह इन सारी बातों को राष्ट्रपति के समक्ष उनके अनुमोदन के लिये रखेगा। श्रीमान्, इस प्रकार से कदाचित राष्ट्रपति को एक बड़ी भद्दी तथा संकटमय स्थिति में डालना है। जबकि प्रस्थापना मुख्य न्यायाधिपति जैसे उच्च पदाधिकारी से प्राप्त होती है तो उन सुझावों को तुरन्त अस्वीकार करने में वह

हिचकिचायेगा। सामान्तया वह यह सोचेगा कि ''इन विषयों में मैं मुख्य न्यायाधीश का क्यों विरोध करूं? वह जैसा चाहता है वैसा उसे करने दो।'' यद्यपि यदि आरम्भ में ही इसे राष्ट्रपति पर छोड़ दिया जाता तो शायद उसका विनिश्चय बहुत कुछ भिन्न होता। अतः मैं समझता हूं कि यह बहुत ही अच्छा होता कि इस उपबंध में हम यह निर्धारित कर देते कि सब बातों का विनिश्चय स्वयं राष्ट्रपति ही करेगा न कि राष्ट्रपति के अनुमोदन से मुख्य न्यायाधिपति।

तत्पश्चात मैं इस अनुच्छेद के खंड (3) पर आता हूं। इस खंड के अनुसार संसद के अधिकार और विशेषाधिकारों का अपहरण किया जा रहा है। इस खंड में यह दिया गया है: ''The administrative expenses of the Supreme Court including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the court, shall charged upon the revenues of India and any fees or other moneys taken by the court shall form part of those revenues.'' विशेष रूप से मैं इस सभा के माननीय सदस्यों का ध्यान 'shall be charged upon the revenues of India, शब्दों की ओर आकर्षित करता हूं। इस खंड से जो उलझने होंगी वे बड़ी गम्भीर तथा दूर तक प्रभाव डालने वाली हैं। इसका यह अर्थ है कि इस विषय में संसद को कुछ भी अधिकार न होगा और इन नियुक्तियों के संबंध में अर्थ संबंधी प्रस्थापना चाहे जैसी हों वे संसद के समक्ष कदापि नहीं आयेंगी और अपने आप ही वे सरकार द्वारा स्वीकार्य मानी जायेंगी और इस विषय में संसद को कोई अधिकार नहीं होगा और यह संसद के मत का विषय ही नहीं होगा। मैं इसमें कोई न्यायमुक्त बात नहीं समझ पाता हूं कि वेतन और भत्ते इत्यादिकों को क्योंकर संसद के मत के अधीन न रखा जाये। यह तो मैं समझ सकता हूं कि न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों के संबंध में हम ऐसा एक उपबंध रखें। इस विषय से संगत अनुच्छेद जब हमने पारित किये थे उस समय हम इसकी व्यवस्था कर ही चुके हैं। पर जहां तक उच्चतम न्यायालय के साधारण चपरासी का संबंध है तथा जहां तक उच्चतम न्यायालय के साधारण पंखा कुली का संबंध है उसका वेतन संसद के मत के अधीन नहीं होगा। क्यों? हमें दूसरों पर शंका नहीं करनी चाहिये पर साथ ही साथ हमें आत्म विश्वास भी होना चाहिये। यदि हमसे दूसरों पर विश्वास करने के लिये कहा जाता है तो साथ ही साथ हमसे यह न कहा जाये कि हम स्वयं अपने में विश्वास न करें। हम अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों के प्रति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों में विश्वास करते हैं तो वेतन इत्यादि नियत करने के विषय में हम संसद में भी विश्वास करें कि वह ठीक कार्य करेगी। यदि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को किसी शक्ति का सौंपना आवश्यक नहीं है तो हम उस शक्ति को उन पर क्यों लादें और अपने अधिकारों तथा विशेषाधिकारों से अपने आप को वंचित क्यों करें? अधीन पदाधिकारियों का वेतन अवश्य ही संसद के मत के अधीन होना चाहिये और संसद के क्षेत्राधिकार से बाहर नहीं होना चाहिये। उदाहरण के रूप में मान लीजिये कि उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति संसद के समक्ष यह प्रस्तुत करता है...।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य ने बहुत समय ले लिया है। मैं नहीं समझता हूं कि इस चर्चा को और अधिक देर तक जारी रखना आवश्यक है। बारह बजने वाले हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, मैं समाप्त करने वाला हूं। मान लीजिये उच्चतम न्यायालय एक करोड़ अथवा इससे भी अधिक रुपयों का एक बड़ा बजट प्रस्तुत करता है। यदि खंड (3) जिस रूप में है उसी रूप में रहता है तो ससंद का उस पर कोई भी नियंत्रण नहीं रहेगा और उच्चतम न्यायालय को इस समस्त राशि का अनुदान करना पड़ेगा। यह कहा जाता है कि उच्चतम न्यायालय से हम यह आशय न करें कि वह इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव करेगा। मैं मानता हूं कि वे ऐसी मूर्खता नहीं करेंगे। पर कुछ बातें ऐसी हैं जिनका संसद को ही विशेष ज्ञान है और जिनका शायद उच्चतम न्यायालय को ज्ञान न हो। देश की वित्तीय स्थिति का संसद को विशेष ज्ञान है। देश की वास्तविक वित्तीय स्थिति से अपरिचित होने के कारण उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश ऐसा बजट बना सकते हैं जिसमें बहुत अधिक व्यय अंतर्ग्रस्त हो। इन कारणों के आधार पर मैं निवेदन करता हूं कि यह अनुच्छेद न तो बहुत अच्छे प्रकार से विचारा गया है और न इसकी शब्दावली ठीक है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्...।

***अध्यक्ष:** मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य पांच मिनट से अधिक समय नहीं लेंगे। मैं इस अनुच्छेद पर आज ही चर्चा समाप्त करना चाहता हूं।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मैं यह ठीक-ठीक नहीं समझ पाता हूं कि यह प्रश्न उठता ही कहां है। जहां तक इस अनुच्छेद और संशोधनों का संबंध है इनमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता को निर्बन्धित करने की कोई बात नहीं है। मूल अनुच्छेद 122 यह था कि भारत का मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति से परामर्श कर वेतन, भत्ते इत्यादि निश्चित करेगा। संशोधन में केवल 'परामर्श' के स्थान में 'अनुमोदन' शब्द रखने का प्रयास किया गया है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर ने कहा था, यह भारत के मुख्य न्यायाधिपति की स्वतंत्रता अथवा गौरव का प्रश्न नहीं है। यह केवल देश के वित्त का प्रश्न है। देश के वित्त के बारे में राष्ट्रपति को अधिक अच्छा ज्ञान है और देश के वित्त के अनुसार वह वेतन और भत्ते नियत करेगा। देश के प्रशासन में ऐसे और भी व्यक्ति हैं जो वैसी ही सामर्थ्य तथा अर्हता रखते हैं और लगभग उतना ही श्रम करते हैं। यह आवश्यक है कि एक ही प्रकार के कार्य के लिये जो समान क्षमता, योग्यता और अर्हता से किया जाता है। समान वेतन, भत्ते, निवृत्ति वेतन और उपलब्धियां होनी चाहियें। अत: स्वतंत्रता का प्रश्न अथवा न्यायपालिका की स्वतंत्रता में कोई निर्बन्धन अथवा अड़चन का प्रश्न उठता ही नहीं है। न्यायालय के पदाधिकारियों की नियुक्ति पूर्णतया उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के हाथ में है और ऐसा होना भी चाहिये क्योंकि इन पदाधिकारियों से तो उन्हें ही तो काम लेना है। कुछ दशाओं में जब राष्ट्रपति उचित समझे उसे नियम निर्धारित करने का अधिकार है कि सेवाओं के कुछ वर्गों के लिये लोक सेवा आयोग से परामर्श किया जायेगा और यहां भी मुख्य न्यायाधिपति के

गौरव और ऐश्वर्य के लिये कोई अहितकारी बात नहीं है। समस्त देश के प्रशासन के लिये यह तो राज्य की नीति का प्रश्न है। अत: सभा की स्वीकृति के लिये मैं दोनों संशोधनों की सिफारिश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, स्थिति को स्पष्ट करने के लिये मैं कुछ बातें कहना चाहूंगा। श्रीमान्, इसमें कोई संदेह नहीं कि सामान्यतया इस सभा ने यह मान लिया है कि विधि द्वारा कार्यपालिका से न्यायपालिका को हम जितना स्वतंत्र बना सकते हैं उतना स्वतंत्र बनाना चाहिये। परन्तु इसके साथ ही साथ यह भय है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के नाम से जैसा कि मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कहा है हम साम्राज्य के अंतर्गत राज्य की उत्पत्ति कर रहे है। हम साम्राज्य के अंतर्गत राज्य की उत्पत्ति करना नहीं चाहते हैं पर साथ ही साथ हम न्यायपालिका को पर्याप्त स्वतंत्रता देना चाहते हैं जिससे कि कार्यपालिका का पक्ष लिये बिना अथवा उससे भयभीत हुए बिना वह कार्य कर सके। मूल अनुच्छेद 122 के स्थान में जिस नये संशोधन को मैंने प्रस्तावित किया है उसके उपबंधों का यदि मेरे मित्र सावधानीपूर्वक परीक्षण करेंगे तो उनको यह विदित होगा कि नये अनुच्छेद में मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया है। वह साम्राज्य के अन्तर्गत राज्य को उत्पत्ति नहीं होने देता है और मैं समझता हूं कि न्यायपालिका को वह उतनी स्वतंत्रता देता है जितनी बिना किसी बैर और प्रीति के न्याय प्रशासन के लिये आवश्यक है। अत: इस नये अनुच्छेद 122 में दिये हुए सब उपबंधों की विस्तृत व्याख्या करने की मुझे आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैं देखता हूं कि इस अनुच्छेद के वाद-विवाद में जिन वक्ताओं ने भाग लिया है वे भी इस बात से साधारणतया सहमत हैं कि नये अनुच्छेद के कुछ खंड जैसे कि खंड (1) खंड (2) और यहां तक कि खंड (3) भी निरापवादनीय हैं। मतभेद केवल खंड (2) के परादिक पर मालूम होता है। मूल परादिक में यह उपबंध था कि राष्ट्रपति से परामर्श कर मुख्य न्यायाधिपति वेतन, भत्ते इत्यादि, इत्यादि नियत करेगा। संशोधित परादिक यह व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त कर मुख्य न्यायाधिपति इस कार्य को करेगा, और वास्तव में प्रश्न यह है कि मूल उपबंध जिसमें यह दिया हुआ है कि राष्ट्रपति से परामर्श कर यह कार्य किया जाये अथवा राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त कर यह कार्य किया जाये इन दोनों विकल्पों में से हम किसको चुनें। इसमें सन्देह नहीं कि मूल मसौदा ''राष्ट्रपति से परामर्श कर'' अन्तिम विनिश्चय मुख्य न्यायाधिपति पर निर्भर करता है अथवा निर्भर करता हुआ प्रतीत होता है और नया परादिक ''राष्ट्रपति से अनुमोदन प्राप्त कर'' शब्दों सहित अन्तिम विनिश्चय राष्ट्रपति पर निर्भर करता हुआ प्रतीत होता है और वास्तव में वह राष्ट्रपति पर निर्भर करता है और यही मंशा भी है। श्रीमान्, इस विषय का विनिश्चय करने के लिये दो बातों पर विचार करना चाहिये। एक यह है कि फेडरल न्यायालय के लिये वर्तमान उपबंध क्या है? यदि माननीय सदस्य भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अनुकूलित अधिनियम की धारा 216 के खंड (2) को देखेंगे तो उन्हें विदित होगा कि उसमें दिये हुए उपबंध अनुमोदन पर इस विषय को छोड़ते हैं—मुझे खेद है कि वह धारा 242 खंड (2) है—जो गवर्नर जनरल की अनुमति पर इस विषय को निर्भर करती है। इस विचार से तो हम, जो स्थिति वर्तमान है उसी को जारी रख रहे हैं। पर मुझे यह प्रतीत होता है कि एक विचार और भी है जो इस

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

बात का समर्थन करता है कि हम इस ''राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त कर'' पद को रखें और वह यह है। नि:संदेह यह वांछनीय है कि राज्य के सेवक को दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन समान हों और इन विषयों में असैनिक सेवाओं में बहुत अधिक अन्तर नहीं होना चाहिये। इससे बहुत अधिक मनोवेदना उत्पन्न होने की संभावना हो सकती है और निधि पर अनावश्यक भार पड़ सकता है। यदि आप इस विषय को मुख्य न्यायाधिपति पर छोड़ दें तो यह हो सकता है, मैं यह नहीं कहता कि यह होगा ही पर यह हो सकता है कि मुख्य न्यायाधिपति ऐसे भत्ते की दर, वेतन और निवृत्ति वेतन नियत कर सकता है जो न्यायपालिका को छोड़कर अन्य विभागों में कार्य करने वाले असैनिक सेवकों के लिये नियत वेतन इत्यादि से बहुत ही भिन्न हो और मैं नहीं समझता हूं कि ऐसी वस्तुस्थिति वांछनीय है। अत: मेरे निर्णय के अनुसार नया मसौदा, नया संशोधन जिसको मैंने प्रस्तुत किया है वह इस विषय का उचित हल है और मैं आशा करता हूं कि सभा मूल परादिक के स्थान में उसको स्वीकार करेगी।

एक और विषय है जिसका मैं जिक्र करूंगा, यद्यपि उसकी व्यवस्था न तो मेरे संशोधन में है और न उसका उल्लेख उन सदस्यों ने ही दिया है जिन्होंने वाद-विवाद में भाग लिया है। इसमें सन्देह नहीं कि मेरे नये अनुच्छेद के खंड (3) के द्वारा हमने यह उपबंध रखा है कि उच्चतम न्यायालय का प्रशासन व्यय भारत के राजस्व पर भारित होगा, पर प्रश्न यह है कि क्या खंड (3) में दिया हआ यह उपबंध न्यायपालिका को स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिये पर्याप्त है। अपने निजी विचार प्रकट करते हुए मैं नहीं समझता हूं कि यह खंड स्वयं न्यायपालिका को स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिये पर्याप्त होगा। आखिर जब हम यह कहते हैं कि कोई विशिष्ट भार राज्य की संचित निधि पर भारित होगा तो इसका क्या अर्थ है? इसका केवल यही अर्थ है कि उस पर सभा का मत लेने की आवश्यकता नहीं हैं इसके अतिरिक्त इसका और कुछ अर्थ नहीं है। हम स्वयं यह कह चुके हैं कि जब किसी विशिष्ट भार का भारत के राजस्व पर भारित करना घोषित कर दिया जाता है तो यही होगा कि वह एक ऐसा विषय हो जायेगा जिस पर मत न लिया जाये यद्यपि विधान मंडल द्वारा उस पर चर्चा हो सकती है। अत: जो उपबंध हमने बनाये हैं उनके प्रकाश में अनुच्छेद 122 को पढ़ने पर जो अर्थ निकलता है वह यही है कि न्यायपालिका से संबंधित बजट के भाग पर प्रति वर्ष विधान मंडल का मत देना अपेक्षित नहीं होगा। पर मैं समझता हूं कि एक प्रश्न ऐसा है कि जो इस विषय की तह तक जाता है और उस पर पहले विचार होना चाहिये और वह यह है कि इस बात का निश्चय कौन करेगा कि उच्चतम न्यायालय की क्या-क्या आवश्यकतायें हैं। हमने ऐसा कोई उपबंध नहीं बनाया है। हमने इस बात का निश्चय करना कार्यपालिका पर छोड़ दिया है कि न्यायपालिका के लिये प्रति वर्ष कितना धन नियत किया जाये। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक बड़ी ही दुर्बल स्थिति है जिसको ठीक करने की आवश्यकता है। इस स्थिति में मैं सभा का ध्यान भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की धारा 216 में दिये हुए उपबंधों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। जिसमें यह कहा गया है कि फेडरल विधान मंडल की सभाओं में गवर्नर जनरल द्वारा रखे जाने वाले किसी व्यय के प्राक्कलन में फेडरल न्यायालय के प्रशासन व्यय के लिये कितनी धनराशि रखी जाये इस विषय में गवर्नर जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करेगा। अत: उस धन राशि

पर जो फेडरल न्यायालय के उचित संचालन के लिये आवश्यक है। यदि कार्यपालिका का मुख्य न्यायाधीश से मतभेद हुआ तो गवर्नर जनरल हस्तक्षेप कर सकता है और यह विनिश्चय कर सकता है कि कितना धन बांट में दिया जाये। पर इस समय वह उपबंध जैसा संविधान हम ग्रहण कर रहे हैं उसके अनुकूल नहीं है अत: मेरे निर्णय के अनुसार हमें मुख्य न्यायाधिपति के प्रशासन कार्य के संचालन के लिये पर्याप्त निधि प्राप्त कराने की कोई दूसरी रीति खोजनी चाहिये। इस बात के कारण मैं इस अनुच्छेद को थोड़ी देर के लिये भी नहीं रोकना चाहता हूं। मैंने केवल सभा के समक्ष इसका जिक्र कर दिया है जिससे कि यदि वह वांछनीय समझे तो इस बात को लाने के लिये बाद में कोई उपयुक्त संशोधन रखा जा सके।

***अध्यक्ष:** सभा के समक्ष सर्वप्रथम मैं, डा. अम्बेडकर ने अपने मूल संशोधन पर जो संशोधन पेश किया है, उसे रखूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''कि संशोधन संख्या 1967 में प्रस्तावित अनुच्छेद 122 के खंड (2) के परन्तुक के स्थान में निम्न परन्तुक रखा जाये:

'Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the President.' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधित रूप में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 1967 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि वर्तमान अनुच्छेद 122 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

122. *Officers and servants and the expenses of the Supreme Court.*– (1) Appointments of officers and servants of the Supreme Court shall be made by the Chief Justice of India or such other judge or officer of the court as he may direct?

Provided that the President may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the court shall be appointed to any office connected with the court, save after consultation with the Union Public Service Commission.

[अध्यक्ष]

(2) Subject to the provisions of any law made by Parliament, the conditions of service of officers and servants of the Supreme Court shall be such as may be prescribed by rules made by the Chief Justice of India or by some other judge or officer of the court authorised by the Chief Justice of India to make rules for the purpose:

Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the President.

(3) The administrative expenses of the Supreme Court, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the court, shall be charged upon the revenues of India, and any fees or other moneys taken by the court shall form part of those revenues.' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 122 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 122 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** जिन कारणों के आधार पर अनुच्छेद 109 से 114 तक स्थगित किये गये हैं उसी आधार पर अनुच्छेद 123 स्थगित रहेगा।

इसके पश्चात् सभा सोमवार, 30 मई सन्, 1949 ई. के प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित हुई।